प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

क्या आपके द्वार खुले हुए हैं?

एक छोटी सी कहानी से मैं आने वाली इन तीन दिनों की चर्चाओं को शुरू करूंगा।

एक राजधानी में एक संध्या बहुत स्वागत की तैयारियां हो रही थीं। सारा नगर दीयों से सजाया गया था। रास्तों पर बड़ी भीड़ थी और देश का सम्राट खुद गांव के बाहर एक संन्यासी की प्रतीक्षा में खड़ा था। एक संन्यासी का आगमन हो रहा था। और जो संन्यासी आने को था नगर में, सम्राट के बचपन के मित्रों में से था। उस संन्यासी की दूर-दूर तक सुगंध पहुंच गई थी। उसके यश की खबरें दूर-दूर के राष्टरें तक पहुंच गई थीं। और वह अपने ही गांव में वापस लौटता था, तो स्वाभाविक था कि गांव के लोग उसका स्वागत करें। और सम्राट भी बड़ी उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा में नगर के द्वार पर खड़ा था।

संन्यासी आया, उसका स्वागत हुआ, संन्यासी को राजमहल में लेकर सम्राट ने प्रवेश किया। उसकी कुशलक्षेम पूछी। वह सारी पृथ्वी का चक्कर लगा कर लौटा था। राजा ने अपने मित्र उस संन्यासी से कहाः सारी पृथ्वी घूम कर लौटे हो, मेरे लिए क्या ले आए हो? मेरे लिए कोई भेंट?

संन्यासी ने कहाः मुझे भी खयाल आया था, पृथ्वी की परिक्रमा करके लौटूं तो तुम्हारे लिए कुछ लेता चलूं। बहुत चीजें खयाल में आईं, लेकिन जो चीज भी मैंने लानी चाही, साथ में खयाल आया, तुम बड़े सम्राट हो, निश्चित ही यह चीज भी तुमने अब तक पा ली होगी। तुम्हारे महलों में किस बात की कमी होगी, तुम्हारी तिजोरियों में जो भी पृथ्वी पर सुंदर है, बहुमूल्य है, पहुंच गया होगा, और मैं हूं गरीब फकीर, नग्न फकीर, मैं तुम्हें क्या ले जा सकूंगा। बहुत खोजा, लेकिन जो भी खोजता था यही खयाल आता था तुम्हारे पास होगा और जो तुम्हारे पास हो उसे दुबारा ले जाने का कोई अर्थ न था। फिर भी एक चीज मैं ले आया हूं। और मैं सोचता हूं, वह तुम्हारे पास नहीं होगी।

सम्राट भी विचार में पड़ गया कि यह क्या ले आया होगा? उसके पास कुछ दिखाई भी न पड़ता था, सिवाय एक झोले के। उस झोले में क्या हो सकता था? आप भी कल्पना न कर सकेंगे, वह उस झोले में क्या ले आया था? कोई भी कल्पना न कर सकेगा वह क्या ले आया था? उसने झोले को खोला और एक बड़ी सस्ती सी और एक बड़ी सामान्य सी चीज उसमें से निकाली। एक आईना, एक दर्पण। और सम्राट को दिया और कहा, यह दर्पण मैं तुम्हारे लिए भेंट में लाया हूं, ताकि तुम इसमें स्वयं को देख सको।

दर्पण राजा के भवन में बहुत थे, दीवालें दर्पणों से ढकी थीं। राजा ने कहाः दर्पण तो मेरे महल में बहुत हैं। लेकिन उस फकीर ने कहा, होंगे जरूर, लेकिन तुमने उनमें शायद ही स्वयं को देखा हो। मैं जो दर्पण लाया हूं इसमें तुम खुद को देखने की कोशिश करना।

जमीन पर बहुत ही कम लोग हैं जो खुद को देखने में समर्थ हो पाते हैं। और वह व्यक्ति जो स्वयं को नहीं देख पाता, वह चाहे सारी पृथ्वी देख डाले, तो भी मानना कि वह अंधा था, उसके पास आंखें नहीं थीं। क्योंकि जो आंखें स्वयं को देखने में समर्थ न हो पाएं, वे आंखें ही नहीं।

यह बड़ी अजीब सी बात उस फकीर ने उस राजा को कही थी।

आज की सुबह आने वाली इन तीन दिन की चर्चाओं का प्रारंभ मैं भी इसी कहानी से इसलिए करना चाहता हूं, मैं भी एक छोटा सा दर्पण इन तीन दिनों में आपको भेंट करना चाहूंगा जिसमें आप अपने को देख सकें। जीवन, जीवन का अर्थ और आनंद, जीवन का अभिप्राय और जीवन का सत्य केवल उन लोगों को उपलब्ध हो पाता है जो स्वयं को देखने में समर्थ हो जाते हैं। लेकिन हमारी आंखें बाहर देखती हैं भीतर नहीं, और हमारे कान बाहर सुनते हैं भीतर नहीं, और हमारे हाथ बाहर स्पर्श करते हैं भीतर नहीं। हमारी सारी दौड़, हमारे

प्रयत्न और प्रयास, हमारे जीवन भर का श्रम कुछ ऐसी संपदा को जुटाने में व्यय और व्यर्थ हो जाता है जो संपदा भी अंततः हमसे छीन जाती है, लेकिन और एक संपत्ति है, एक और संपदा है जो स्वयं को जानने और पहचाने से उपलब्ध होती है। जो उस संपदा को पा लेता है, उसे न केवल जीवन का अर्थ और सत्य मिल जाता है, बल्कि वस्तुतः उसे ही जीवन भी मिल पाता है। क्योंकि उस सत्य को जाने बिना हम जो भी जानते हैं वह सब, वह सब मृत्यु में समा जाने को है और समाप्त हो जाने को है। उस सत्य को जो मनुष्य की आत्मा है जाने बिना हम जीते नहीं, धीरे-धीरे मरते हैं और इस धीरे-धीरे मरने के क्रम को ही जीवन समझ कर भूल कर बैठते हैं। जिसे हम जीवन जानते हैं, वह ग्रेजुअल डेथ, क्रमिक मरते जाने के अतिरिक्त और क्या है।

बच्चा जिस दिन पैदा होता है उसी दिन से मरने की क्रिया शुरू हो जाती है और अंत में जिसे हम मृत्यु कहते हैं वह कोई आकस्मिक घटना नहीं है, बल्कि जन्म के दिन जो प्रक्रिया शुरू हुई थी उसी की समाप्ति है।

रोज हम मर रहे हैं प्रतिक्षण और प्रतिपल, यह मरने कि क्रिया जिस दिन पूरी हो जाती है, कहते हैं, मृत्यु आ गई। लेकिन मृत्यु कहीं बाहर से नहीं आ जाती, मृत्यु हमारे भीतर का निरंतर विकास है। हमारे भीतर ही मृत्यु निरंतर विकसित होती रहती है। मृत्यु बाह्य घटना नहीं, आंतरिक प्रक्रिया है। जन्म के साथ उसका प्रारंभ होता है और मृत्यु के साथ उसकी पूर्णता होती है। तो जिसे हम जीवन कहते हैं वह जीवन नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे मरते जाना है।

निश्चित ही यह जो क्रमिक मृत्यु है इस क्रमिक मृत्यु में न तो आनंद हो सकता है, न शांति हो सकती है, न सौंदर्य हो सकता है। मृत्यु तो होगी कुरूप, मृत्यु में तो होगा दुख, मृत्यु तो होगी एक पीड़ा। और इसीलिए हमारा एक पूरा जीवन दुख की एक लंबी कथा है।

शायद ही हममें से कुछ थोड़े से लोग जीवन को जान पाते हों, बाकी सारे लोग जीते हैं जीवन से अपरिचित और अनजान। वह जो स्वयं को देखना है वही जीवन को पा लेना भी है।

एक वृद्ध फकीर के पास किसी ने जाकर पूछा था, कि मैं मृत्यु के संबंध में कुछ जानना चाहता हूं। तो उस वृद्ध फकीर ने कहा था, तुम कहीं और जाओ। अगर मृत्यु के संबंध में जानना है तो किसी और से पूछो, क्योंकि जहां मैं हूं वहां मृत्यु है ही नहीं, वहां सिर्फ जीवन है। मैं जीवन के संबंध में तो जानता हूं, मृत्यु के संबंध में मुझे कोई भी पता नहीं है। लेकिन हमसे अगर कोई पूछे कि जीवन क्या है, तो शायद हमें उलटी बात कहनी पड़े, हमें कहना पड़े कि जीवन अगर जानना है तो कहीं और पूछो, हम तो मृत्यु के सिवाय और कुछ भी नहीं जानते, हम तो मरना जानते हैं जीवन से हमारा क्या संबंध? हमारी क्या पहचान? जीवन से हमारा क्या नाता? और जिनका जीवन से भी नाता नहीं हैं वे भी अगर परमात्मा को जानने चले हों, तो गलती में हैं। और जिनका जीवन से भी नाता नहीं हैं वे भी मोक्ष के संबंध में चिंतन करते हों, तो पागल हैं। जीवन को जो जान लेता है वह परमात्मा को भी जान लेता है, क्योंकि जीवन की समग्रता के अतिरिक्त परमात्मा और कुछ भी नहीं है। और जो जीवन को जान लेता है वह मोक्ष को भी जान लेता है, क्योंकि जहां मृत्यु नहीं है वही मोक्ष है। मैं इसे फिर से दोहराऊं, जो जीवन को जान लेता है वह परमात्मा को भी जान लेता है, क्योंकि परमात्मा जीवन की परिपूर्णता के सिवाय और कुछ भी नहीं, जीवन की समग्रता ही परमात्मा है। और जो जीवन को जान लेता है वह मोक्ष को भी जान लेता है, क्योंकि जहां मृत्यु नहीं है वहां मुक्ति है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई बंधन नहीं है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई परतंत्रता नहीं है। मृत्यु के अतिरिक्त और कोई दुख और कोई अंधकार नहीं है। लेकिन हम जिसे जीवन समझते हैं वह मृत्यु ही है।

एक मुसलमान फकीर का मुझे स्मरण आता है। कभी तो वह एक बहुत बड़े राज्य का सम्राट था। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था, करवटें बदलता था, जैसा कि सभी सम्राट बदलते हैं और सो नहीं पाते, तभी उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि ऊपर छप्पर पर कोई चल रहा है, उसने चिल्ला कर पूछा कि आधी रात में छप्पर पर कौन

है? ऊपर से आवाज आई किसी आदमी की, माफ करें, मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं। उस राजा ने कहा, पागल मालूम होते हो! ऊंट खो गया हो तो छप्परों पर नहीं खोजना पड़ता, मकान के छप्परों पर ऊंट मिलेगा? तो वह आदमी ऊपर से हंसा और उसने कहा कि अगर स्वर्ण-सिंहासनों पर शांति मिल सकती है, और अगर हिंसा के द्वारा, लोगों की हत्या के द्वारा, अगर आनंद मिल सकता है, तो छप्परों पर ऊंट भी मिल सकता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

राजा निकल कर बाहर आ गया, उसने अपने आदमी भेजे कि पकड़ो इस आदमी को यह कौन है? उसने एक बड़ी सच्ची बात कह दी थी। लेकिन वह आदमी पकड़ा नहीं जा सका। दूसरे दिन दोपहर में जब वह सम्राट अपने सिंहासन पर दरबार में बैठा हुआ था, तब एक आदमी आया और द्वारपाल से झगड़ा करने लगा। द्वारपाल से उस आदमी ने कहा कि मैं इस धर्मशाला में ठहरना चाहता हूं, इस सराय में रुकना चाहता हूं।

द्वारपाल ने कहा, यह कोई सराय नहीं, राजा का भवन है, राजा का निवास है। लेकिन वह आदमी माना नहीं और उसने कहा कि अगर ऐसा है तो मुझे राजा के समक्ष ले चलें। उसे राजा के सामने लाया गया, उसने राजा से कहा कि मैं कहता हूं इस सराय में मुझे ठहर जाने दें। दो-चार दिन मुझे रुकना है और मैं चला जाऊंगा। राजा ने कहा, पागल हो! यह सराय नहीं है, यह मेरा निवास है। लेकिन वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा कि मैं कुछ वर्षों पहले आया था, तब भी यही बात हुई थी और तुम्हारे इस सिंहासन पर कोई दूसरा आदमी बैठा हुआ था, और उसने भी कहा था यह मेरा निवास है। वह आदमी कहां है अब? वह राजा हंसा और उसने कहा कि वे मेरे पिता थे, और अब वे दुनिया में नहीं हैं। उस फकीर ने कहाः और कुछ वर्षों पहले मैं आया था, तब तुम्हारे पिता भी यहां नहीं थे, कोई और आदमी इस सिंहासन पर बैठा था। और तब भी यही बात हो गई थी और मैंने कहा था, इस सराय मैं मुझे ठहर जाने दें, तो उस आदमी ने भी कहा था, यह सराय नहीं यह मेरा निवास है। वह आदमी कहां है? उस राजा ने कहाः वे मेरे पिता के पिता थे, उनको मरे बहुत वर्ष हो चुके। वह फकीर बोला, मैं और भी पहले आया हूं, लेकिन हर बार यहां कोई दूसरा आदमी मिलता है और वह आदमी यही कहता है, यह मेरा निवास है। और जब हर बार आदमी बदल जाते हों, तो मैं इसे सराय न समझूं तो और क्या समझूं? मुझे इस धर्मशाला में दो-चार दिन ठहर जाने दें, क्योंकि आप खुद भी दो-चार दिन के मेहमान से ज्यादा नहीं होंगे। जब मैं दुबारा आऊंगा तो यहां कोई दूसरा आदमी इस सिंहासन पर मुझे यही बातें कहता हुआ मिलेगा।

उस राजा ने उस आदमी को पकड़वा लिया और कहा, मालूम होता है तुम वही आदमी हो जो रात छप्पर पर ऊंट खोज रहे थे? वह आदमी बोला कि निश्चित ही, मैं वही आदमी हूं। और मैं तुमसे यह कहने आया हूं कि जिसे तुमने घर समझ लिया है वह सराय से ज्यादा नहीं है और जहां तुम खोज रहे हो वह छप्पर पर ऊंट खोजने जैसी जिंदगी है।

वह राजा उसी दिन उठा और फकीर हो गया। वह गांव के बाहर जाकर रहने लगा। और गांव में जो लोग भी आते थे, वे उससे पूछते कि बस्ती का रास्ता कहां है? तो वह कहता, उत्तर की तरफ चले जाओ, उत्तर की तरफ बस्ती है। वे लोग उत्तर जाते और पाते कि वहां मरघट है बस्ती नहीं। वे वापस लौटते, उस राजा को कहते, जो अब फकीर हो गया था, तुम्हारा मस्तिष्क तो खराब नहीं है? क्योंकि जहां तुमने भेजा वह मरघट है। वह राजा कहता, जहां तक मेरी समझ है, जिसे तुम बस्ती कहते हो वह मरघट है, क्योंकि वहां हर आदमी मरने को है। आज एक मरेगा, कल दूसरा, परसों तीसरा, वहां कोई भी आदमी बसा हुआ नहीं है। लेकिन जिसे तुम मरघट कहते हो, वहां जो लोग भी बस गए हैं वे हमेशा को बस गए हैं, वहां से कोई मरता नहीं। इसलिए मैं मरघट को बस्ती कहता हूं और तुम्हारी बस्ती को मरघट कहता हूं।

जिन लोगों ने भी आज तक जीवन को जाना है, उन सबका यही कहना है। जिसे हम जीवन कहते हैं उसे वे मृत्यु कहते हैं और जिसे हम बस्ती कहते हैं उसे वे मरघट कहते हैं। और शायद हमारी उस तरफ आंखें भी नहीं उठतीं जो जीवन है।

जो मृत्यु नहीं है वह आंख उठानी, वह दृष्टि, उस तरफ देखना कैसे संभव हो सकता है? उस प्रक्रिया को ही मैं दर्पण कहूंगा जिसमें आप अपने को देख सकें और उसको जिसकी कोई मृत्यु नहीं है जो कि अमृत है। और ऐसा नहीं है कि आज का आदमी उसे देखने असमर्थ हो गया हो, आदमी हमेशा से असमर्थ रहा है। और ऐसा भी नहीं है कि आज कि दुनिया आत्मज्ञान से हीन हो गई हो, हमेशा से, थोड़े से लोगों को छोड़ कर, हमारा अधिकांश हिस्सा उस दिशा से अंधा रहा है। कोई भूल हो गई है आदमी के साथ, आदमी की संस्कृति में, उसके विचार में, उसके जीने के ढंग में, कोई आधारभूत, कोई बुनियादी गलती हो गई है। जिसकी वजह से कुछ थोड़े से लोग ही जो उस गलती से उभर पाते हैं, उस गलती से मुक्त हो पाते हैं, वे तो स्वयं को, सत्य को और जीवन को जान पाते हैं, शेष सारे लोग केवल आशाओं में जीते हैं, उनकी कोई उपलब्धि नहीं होती। केवल आकांक्षाओं में जीते हैं, उनकी कोई प्राप्ति नहीं होती। केवल सपनों में जीते हैं, सत्य से उनका कोई साक्षात नहीं हो पाता।

वे कौन सी भूल हो गई हैं, उन आधारभूत भूलों के संबंध में आज सुबह में चर्चा करूंगा। और उनसे मुक्त होने के बाबत बाद में।

शायद आप थोड़े विचार में भी पड़ जाएं, क्योंकि जिन बातों को मैं भूल समझता हूं, हो सकता है उन्हीं बातों को आप धर्म समझते रहे हों। लेकिन मैं चाहता हूं कि आप सोच-विचार में पड़ जाएं, क्योंकि जो व्यक्ति विचार में पड़ जाता है उसके लिए आज नहीं कल रास्ता मिल सकता है। लेकिन जो निश्चिंत, अंधा बना बैठा रहता है उसके लिए कोई मार्ग नहीं है।

मनुष्य के मन को निर्माण करने वाली बातों में जो सबसे बड़ी बुनियादी भूल हो गई, जिसकी वजह से वह अपनी तरफ आंख भी नहीं उठा पाता और वे लोग जो निरंतर कहते हैं अपने को जानो, आत्मा को जानो, नो दाई सेल्फ, और इस तरह की बातें कहते हैं, वे लोग भी उसी भूल को दोहराते हैं। और इसलिए बातचीत तो हो जाती है लेकिन कोई अपने को जान नहीं पाता।

वह पहली भूल यह हो गई है कि मनुष्य को हमने इधर पांच हजार वर्षों से श्रद्धा और विश्वास सिखाया है, विवेक और विचार नहीं। हम आदमी को सिखाते रहे हैं विश्वास करने के लिए, और जो आदमी विश्वास कर लेता है उस आदमी की सारी खोज बंद हो जाती है। जो आदमी विश्वास कर लेता है, श्रद्धा कर लेता है, मान लेता है, स्वीकार कर लेता है, उसके भीतर से सारा अन्वेषण समाप्त हो जाता है। उसकी सारी इंक्वायरी, उसकी सारी खोज, उसकी सारी जिज्ञासा की मृत्यु हो जाती है।

श्रद्धा सबका बड़ा, सबसे बड़ी रुकावट और पत्थर की तरह मनुष्य की आत्मा की खोज पर खड़ी हो जाती है। लेकिन हमें यह कहा जाता रहा है कि हम विश्वास करें, श्रद्धा करें-हम मान लें गीता को, या कुरान को, या बाइबिल को; महावीर को, बुद्ध को, या कृष्ण को, या किसी को भी, चाहे वह कोई हो-चाहे हिंदू हों, चाहे मुसलमान हों, चाहे ईसाई हों, उनकी बातों में कितना भी भेद हो, लेकिन एक बात पर दुनिया के सारे धर्म सहमत रहे हैं, वह यह कि विश्वास करना जरूरी है। और विश्वास का मतलब क्या होगा? विश्वास का मतलब होता हैः अंधापन। विश्वास का मतलब होता हैः अपनी आंखों पर नहीं, किसी और की आंखों पर श्रद्धा। विश्वास का मतलब होता हैः जो मैं नहीं जानता हूं, उसको मान लेना। विश्वास का अर्थ होता हैः खुद के विवेक और विचार का आत्मघात।

विश्वास सुसाइडल है, आत्मघाती है। क्योंकि विश्वास यह कहता है कि अपने से बाहर श्रद्धा का कोई बिंदु है-चाहे वह राम हों, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, चाहे गीता, चाहे कुरान, चाहे कुछ और, मेरे से बाहर

कुछ है जो मुझे मान लेना है। और स्मरण रखें, जो व्यक्ति मान लेने को राजी हो जाता है वह कभी जान नहीं पाता। क्योंकि मानने का अर्थ ही है, जानने की सारी चिंता, जानने की सारी आकांक्षा, जानने की सारी अभीप्सा छोड़ दी गई। मनुष्य के व्यक्तित्व के निर्वाण में जो सबसे ज्यादा आत्म-ज्ञान के विरोध में बात खड़ी हो गई है, वे हैं उसके विश्वास, उसकी बिलीफस, उसकी वे स्वीकृतियां जो उसने अनजाने, बिना खुद जाने अंगीकार कर ली हैं और मान लीं, तब वह अंधे की भांति किसी के पीछे चलने को राजी हो जाता है। तब वह सोचता नहीं, तब वह विचारता नहीं, तब वह संदेह नहीं करता, तब वह आंख बंद कर लेता है। क्योंकि खुली आंख होगी तो विचार पैदा होगा, अगर खुली आंख होगी तो चिंतन पैदा होगा, अगर आंख खुली होगी तो संदेह भी पैदा होगा।

इसलिए जिसे विश्वास करना है, उसे आंख बंद कर लेनी होती है। आंख अगर बिल्कुल ही फूट जाए तो विश्वास पूरा हो जाता है। तब कोई संदेह पैदा नहीं होता, कोई विचार पैदा नहीं होता, कोई जिज्ञासा पैदा नहीं होती। तब जो भी कहा जाता है वह मान लिया जाता है। और ऐसे व्यक्ति को हम धार्मिक कहते रहे हैं। ऐसा व्यक्ति जरा भी धार्मिक नहीं है। और ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से जमीन पर धर्म का अवतरण नहीं हो सका। ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से दुनिया में अधर्म है। ऐसे धार्मिक व्यक्तियों की वजह से हिंदू तो पैदा हो सका, मुसलमान पैदा हो सका, ईसाई और जैन पैदा हो सकें, लेकिन धर्म पैदा नहीं हो सका। धर्म हजार हो सकते हैं? धर्म अनेक हो सकते हैं? धर्म बहुत हो सकते हैं? अगर धर्म सत्य है तो एक ही हो सकता है। हिंदुओं की केमेस्ट्री अलग नहीं होती, हिंदुओं की फिजिक्स मुसलमानों की फिजिक्स से अलग नहीं हो सकती। ईसाइयों का गणित जैनियों के गणित से अलग नहीं हो सकता।

पदार्थ के नियम एक हैं, युनिवर्सल हैं, तो आत्मा के नियम अनेक कैसे हो सकते हैं? अगर जड़ पदार्थ के नियम भी सार्वलौकिक हैं, तो परमात्मा के नियम भिन्न-भिन्न और अलग-अलग कैसे हो सकते हैं? लेकिन जमीन पर कोई तीन सौ धर्म हैं, और एक-दूसरे के शत्रु। इन तीन सौ धर्मों के खड़े होने का आधार क्या है? ये किस बुनियाद पर खड़े हुए हैं? अगर सोच-विचारशील मनुष्य होता, तो दुनिया में धीरे-धीरे एक धर्म रह जाता। उसका कोई नाम नहीं होता, उसका हिंदू-मुसलमान नाम नहीं हो सकता था। क्योंकि नामों की जरूरत तभी तक है जब तक बहुत धर्म हों, अगर एक ही नियम शेष रह जाए तो नामों की कोई जरूरत नहीं। और सच्चाई यह है कि न तो परमात्मा का कोई नाम है और न धर्म का कोई नाम है, लेकिन नामों वाले धर्मों के कारण उस बेनाम धर्म को खोजना संभव नहीं हो सका।

और नामों वाले धर्मों के खड़े होने का आधार क्या है?

आधार है विश्वास। इसलिए हिंदू मुसलमान के कितने ही विरोध में हो, ईसाई हिंदू के कितने ही विरोध में हो, लेकिन एक बात पर वे सब सहमत हैं कि विश्वास लाओ, विश्वास करो। विचार विद्रोही है, इसलिए विचार से सभी को डर है। विचार संदेह करता है, डाउट करता है, इसलिए विचार से सभी को भय है। विचार मत करो, स्वीकार करो। संदेह मत करो, श्रद्धा करो। यह शिक्षा रही है। और इस शिक्षा का परिणाम यह होता है कि मनुष्य के भीतर जो सोया हुआ विवेक है उसके जागने पर ताले पड़ जाते हैं, उसके जागरण के आस-पास दीवालें खड़ी हो जाती हैं। उस विवेक के जागने का कोई कारण नहीं रह जाता। अगर कोई आदमी किसी दूसरे के कंधे पर हाथ रख कर आंख बंद करके चलने का अयास करे और वर्ष, दो वर्ष तक अपनी आंख बंद रखे, तो फिर उसकी आंखें काम करना बंद कर देंगी। अगर कोई आदमी अपने पैरों को बांध कर बैठ जाए, तो वर्ष, दो वर्ष में उसके पैर काम करना बंद कर देंगे। जिन अंगों का हम उपयोग बंद कर देते हैं, वे मुर्दा हो जाते हैं। जो आदमी विश्वास कर लेता है, वह विवेक से काम लेना बंद कर देता है। विवेक मर जाता है, रह जाता है विश्वास और विश्वास अंधा है। अंधा विश्वास आत्म-ज्ञान में नहीं ले जा सकता। आत्मज्ञान के लिए चाहिए आंखों वाला

विवेक, अंधा विश्वास नहीं। और जरूरी नहीं है कि विश्वास आस्तिक का ही हो, विश्वास नास्तिक का भी होता है। एक आदमी का विश्वास है कि ईश्वर है, उससे पूछें कि वह जानता है ईश्वर को? अगर वह नहीं जानता और उसने मान लिया, तो उसने अपने जीवन को एक असत्य पर खड़ा दिया।

एक आदमी कहता है, ईश्वर नहीं है। उससे पूछें, वह जानता है कि ईश्वर नहीं है? अगर वह नहीं जानता है और उसने किन्हीं की बातों को मान कर यह स्वीकार कर लिया है कि ईश्वर नहीं है, उसने भी विश्वास कर लिया है, उसने भी अपने जीवन को एक असत्य पर खड़ा कर लिया है।

नास्तिक और आस्तिक दोनों का जीवन असत्य का जीवन है। धार्मिक व्यक्ति न तो आस्तिक होता है, न नास्तिक होता है, धार्मिक व्यक्ति तो खोजी होता है। वह स्वीकार नहीं कर लेता यात्रा के पहले, वह मान नहीं लेता, वह खोज करता है। और जिस दिन उसके प्राण किसी साक्षात को उपलब्ध होते हैं, उसी दिन, उसी दिन वह जानता है। और उस दिन मानने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती, उस दिन विश्वास करने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। उस दिन वह जानता है। जानना ज्ञान, मुक्ति लाता है। विश्वास, मान लेना बंधन पैदा करता है। और ये बंधन, विश्वास के बंधन हमेशा बाहर होते हैं, क्योंकि विश्वास जब भी हम करते हैं तो किसी पर करते हैं, वह बाहर होगा। इसलिए विश्वास हमेशा बहिर्मुखी है और ज्ञान हमेशा अंतर्मुखी है। जिसे स्वयं को जानना है उसे विश्वास का रास्ता छोड़ देना होगा और ज्ञान के रास्ते पर चरण रखने होंगे।

ज्ञान के रास्ते पर चलने का पहला सूत्र होगाः विश्वास के रास्ते से मन को हटा लेना। हम सारे लोग विश्वास के रास्ते पर हैं। इसलिए चाहे हम मंदिरों में जाते हों, चाहे मस्जिदों में, चाहे शास्त्र पढ़ते हों और पूजा करते हों, हमें स्वयं से साक्षात नहीं हो सकेगा। विश्वास के रास्ते से कभी भी स्वयं का साक्षात न हुआ है और न हो सकता है।

विश्वास सबसे बड़ा अधार्मिक गुण है। मनुष्य के व्यक्तित्व को बांध लेने वाले और अंधा कर देने वाले सूत्रों में विश्वास पहला सूत्र है। इसके पहले कि मैं दूसरे सूत्र की बात करूं, मैं एक बार पुनः आपको यह स्पष्ट कर दूं, नास्तिक भी विश्वासी होता है और आस्तिक भी। इसलिए यह न सोच लें कि मैं विश्वास छोड़ने को कह कर नास्तिकता सिखा रहा हूं। नास्तिक भी विश्वासी होता है और आस्तिक भी। क्योंकि दोनों नहीं जानते। और न जानने में जो भी स्वीकार कर लिया जाता है वह अंधा कर देता है। इसलिए ज्ञान के रास्ते पर पहली बात यह जान लेना जरूरी है कि मैं नहीं जानता हूं। और इस न जानने की स्थिति में कोई भी विश्वास करना खतरनाक है। क्योंकि विश्वास से यह भ्रम पैदा होता है, न जानते हुए यह भ्रम पैदा होता है कि मैं जानता हूं।

मैं एक छोटे से अनाथालय में गया था। और वहां के संयोंजकों ने मुझे कहा कि हम अपने अनाथालय में बच्चों को धर्म की शिक्षा देते हैं। मैंने उनसे कहा कि जहां तक मेरी समझ है, धर्म की कोई शिक्षा हो ही नहीं सकती। धर्म की साधना तो हो सकती है, शिक्षा नहीं। क्योंकि साधना होती है भीतर और शिक्षा होती है बाहर। तो विज्ञान की तो शिक्षा हो सकती है, धर्म की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। फिर भी आप क्या शिक्षा देते हैं, मैं जानना चाहूं।

वे मुझे अपने बच्चों के पास ले गए और उन्होंने कहाः आप इन बच्चों से पूछें, तो आपको पता चल जाएगा। मैंने उनसे ही निवेदन किया कि वे ही पूछें, मैं सुनूंगा। सौ के करीब बच्चे थे, उन्होंने उनसे पूछाः ईश्वर है? उन सारे बच्चों ने हाथ उठाए और कहाः ईश्वर है। उन बच्चों को सिखा दिया गया ईश्वर है। वे छोटे-छोटे अनाथ बच्चे, उन्हें जो भी सिखा दिया जाए, वह सीख लेंगे। अगर संयोग से वे रूस में पैदा हुए होते, तो रूस की हुकूमत उन्हें सिखा देती ईश्वर नहीं है। और मैं अगर रूस में जाकर उनसे पूछता, ईश्वर है? तो वे सारे बच्चे कहते, ईश्वर नहीं है। क्योंकि उन्हें सिखा दी गई होती बात, ईश्वर नहीं है। यहां उन्हें सिखा दिया गया है, ईश्वर है। उन्होंने पूछाः यह ईश्वर कहां है? तो उन सारे बच्चों ने हृदय पर हाथ रखे और कहाः यहां।

मैंने एक छोटे से बच्चे से पूछाः हृदय कहां है?

उस बच्चे ने कहाः यह तो हमें बताया नहीं गया। जो हमें बताया गया है वह हम बता रहे हैं। हृदय कहां है यह हमें बताया नहीं गया।

इस बच्चे को हृदय का कोई पता नहीं है। लेकिन इसे इस बात को बता दिया गया है कि ईश्वर यहां है। उसने सीख लिया। इस बचपन की अवस्था में जब कि विचार का अभी कोई विकास नहीं हुआ। सारे धर्मों के लोग बच्चों के साथ जो अन्याय करते हैं, उसका हिसाब लगाना कठिन है। जब कि विचार का कोई जन्म नहीं हुआ, तब हम उन्हें जो भी सिखा दें, वह उनके चित्त में गहरा होकर बैठ जाएगा और जीवन भर वे उसी को दोहराते रहेंगे इस भांति जैसे कि जानते हैं। जब कि वे जानते नहीं हैं। वे बच्चे बड़े हो जाएंगे और जब उनके जीवन में प्रश्न उठेगा, ईश्वर है, तो बचपन से सिखी गई बात उनके भीतर से कहेगी, है। यह सिखी हुई बात, और जब प्रश्न उठेगा, ईश्वर कहां है, तो उनके हाथ मशीनों की तरह उठ जाएंगे और हृदय पर पहुंच जाएंगे और वे कहेंगे, यहां। यह हाथ झूठा है। यह हाथ जो उठ रहा है, यह सच्चा नहीं है। इस बच्चे का कोई भी अनुभव नहीं है कि ईश्वर है और है तो कहां है। लेकिन बचपन से दोहराई गई बात, बहुत बार दोहराई गई बात, दूसरों के द्वारा, खुद के द्वारा, यह भूल जाएगा कि यह बात मैंने सिखी है यह बात मैं जानता नहीं हूं। और तब अज्ञान तो होगा इसके भीतर, ऊपर से झूठा ज्ञान चिपक जाएगा, जो इसे जीवन भर धोखा देगा।

हम सब भी ऐसे ही बच्चे हैं, जो इसी तरह की बातों को सीख कर बड़े हो गए हैं। इसके पहले कि कोई सत्य की खोज में विचार करे, स्वयं को जानने के लिए उत्सुक हो, या परमात्मा की खोज में निकले, उसे अपने से बहुत गहरे में पूछ लेना चाहिए, जो मैं जानता हूं, वह कहीं सीखा हुआ तो नहीं है? अगर वह सीखा हुआ है, तो उससे मुक्त हो जाना चाहिए। क्योंकि जो सीखा हुआ है वह ज्ञान का भ्रम देता है, ज्ञान नहीं।

ज्ञान सीखा नहीं जाता, जाना जाता है। ज्ञान दूसरों से उपलब्ध नहीं होता, खुद में खोदा जाता है और विकसित होता है। शब्द सीखे जाते हैं, ज्ञान उघाड़ा जाता है। ज्ञान की एक डिस्कवरी है, ज्ञान का एक अनावरण है। खुद के प्राणों के भीतर जब हम पर्दों को उघाड़ते हैं, तो वह उपलब्ध होता है जो ज्ञान है। और दूसरों से जो हम शब्द सीख लेते हैं, सिद्धांत सीख लेते है और शास्त्र सीख लेते हैं वह ज्ञान नहीं है। और जो आदमी जितना सीखे हुए शब्दों में खो जाता है उस आदमी की ज्ञान की तरफ यात्रा बंद हो जाती है।

विश्वास शब्दों से ज्यादा नहीं है। शब्द बिल्कुल निष्प्राण हैं। इसलिए ज्ञान तो इकट्ठा हो जाता है शब्दों में और दिखाई पड़ता है कि ज्ञान उपलब्ध हो गया। लेकिन हमारे प्राणों में कोई ज्योति उससे जगती नहीं। हमारे चित्त में कोई आलोक उससे पैदा नहीं होता। हमारे प्राण उससे नाच नहीं उठते और हमारे हृदय की वीणा पर उससे कोई संगीत का जन्म नहीं होता। होगा भी नहीं। क्योंकि शब्द हैं निष्प्राण, विश्वास है अंधे, श्रद्धा है थोथी, उससे कुछ होगा नहीं। उससे हट जाना जरूरी है। और हटने के लिए कुछ और नहीं कहना होगा, अगर हम ठीक से अपने चित्त के सारे ज्ञान को खोज डालें, तो हमें पता चल जाएगा कि यह ज्ञान सब सीखा हुआ है, इसलिए झूठा है। अज्ञान हमारा इससे कहीं ज्यादा सत्य है।

सुकरात को उसके मित्रों ने एक दिन जाकर कहा, एथेंस में सारे वृद्धजन कहते हैं कि सुकरात महाज्ञानी है। सुकरात ने उन मित्रों को कहा, जाओ और उनसे कहना, ऐसी झूठी बात न कहें, क्योंकि सुकरात खुद यह कहता है कि वह ज्ञानी नहीं है महाअज्ञानी है। और सुकरात ने कहा, जब मैं छोटा था और मेरी अवस्था थोड़ी थी, तब मुझे यह खयाल था कि मैं जानता हूं। फिर मैं जवान हुआ, मेरी समझ बड़ी, तो मेरे जानने के भवन की बहुत सी ईंटें और दीवालें गिर गईं, और मेरे ज्ञान के भवन में बहुत छेद हो गए, और मेरी समझ में आने लगा कि मैं क्या जानता हूं, बहुत कम जानता हूं। लेकिन जैसे-जैसे में वृद्ध हुआ और मेरी खोज गहरी हुई और मेरी आंखें ज्यादा सतेज हुईं, तो मैंने पाया कि वह भवन जो ज्ञान का बचपन में मालूम होता था बिल्कुल गिर गया है, अब उसकी कोई दीवालें नहीं रह गईं। और जैसे-जैसे में वृद्ध होता जा रहा हूं मुझे समझ में आ रहा है कि मैं नहीं जानता हूं।

आप हैरान होंगे, जानने का भ्रम बहुत चाइल्डीश, बहुत बचकाना है। न जानने की समझ बहुत गहरी, बहुत वि.जडम से, बहुत बुद्धिमत्ता से भरी हुई है। क्योंकि जानने का भ्रम विश्वासों से पैदा होता है। और जब समझपूर्वक दिखाई पड़ता है कि विश्वास तो उधार हैं, बारोड हैं, दूसरों से लिए हुए हैं, मेरे नहीं हैं, तो वे टूट जाते हैं और भीतर दिखाई पड़ता है अतल अंधकार, अतल अज्ञान, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग, न जानने का बोध, न जानने की अवस्था का अनुभव होता है।

पहला सूत्र है आत्मज्ञान कि दिशा में "मैं नहीं जानता हूं" इस बात को जानना। यह सत्य है कि मैं नहीं जानता हूं, और इस सत्य से जो शुरू करेगा वह अंततः परम सत्य को उपलब्ध हो जाता है। लेकिन जो इस असत्य से शुरू करेगा कि मैं जानता हूं, ईश्वर है, आत्मा है, उसकी यात्रा कभी सत्य पर कभी पूरी नहीं हो सकती। क्योंकि जो हम बीज में बोते हैं वही हमें फसल भी काटनी होती है। अगर बीज ही असत्य के बोए गए, तो फसल सत्य की नहीं काटी जा सकती।

विश्वास असत्य है, क्योंकि वह स्वयं का जाना हुआ नहीं। और इसलिए उसके आधार पर जो अपने भवन को खड़ा करेगा, उसका भवन झूठा होगा, वह ताश के पत्तों की तरह होगा, जिंदगी की हवाएं उसे उड़ा देगीं और नष्ट कर देगीं। वह भवन सच्चा नहीं है।

इसलिए पहली बात, एक सत्य से ही बात शुरू करें और वह सत्य यह है कि हम नहीं जानते हैं। और जो हम जानते हैं, वह भ्रामक है, उधार है, और दूसरों का है। मनुष्य के व्यक्तित्व के भ्रांत हो जाने में, श्रद्धा और विश्वास पहला कारण है। श्रद्धा और विश्वास से उलटा क्या होगा? अश्रद्धा, अविश्वास। नहीं, डिक्शनरियां अक्सर झूठ बोल देती हैं, शब्दकोश अक्सर झूठ बोल देते हैं। अगर शब्दकोश में खोजने जाएंगे तो विश्वास का उलटा है अविश्वास। श्रद्धा का उलटा है अश्रद्धा। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, अश्रद्धा और अविश्वास उलटे नहीं हैं, सजातीय हैं, विश्वास के बंधु हैं। विश्वास का ही भाई है अविश्वास, श्रद्धा की ही बहन है अश्रद्धा, वे विरोधी नहीं हैं। विरोधी इसीलिए नहीं हैं कि अश्रद्धा भी अविचार है, वह भी विवेक नहीं है। अविश्वास भी अविचार है, वह भी विचार नहीं है। जब हम जानते ही नहीं हैं तो श्रद्धा करना भी अज्ञान है और अश्रद्धा करना भी। ईश्वर पर अश्रद्धा भी वही कर रहा है जो नहीं जानता और श्रद्धा भी वही कर रहा है जो नहीं जानता।

श्रद्धा और अश्रद्धा दोनों से अलग कोई बात है, दोनों से विरुद्ध और उलटी भी कोई बात है। वह बात है, विवेक; वह बात है, विचार; वह बात है, मन का खुला होना, ओपननेस। श्रद्धा भी मन को बंद कर देती है, अश्रद्धा भी मन को बंद कर देती है। द्वार बंद हो जाते हैं। हम राजी हो जाते हैं किसी एक बिंदु पर कि ठीक है, पड़ाव आ गया, जान लिया हमने कि ईश्वर नहीं है या ईश्वर है, दोनों हालत में मन के द्वार बंद हो जाते हैं। और जो क्लोज्ड माइंड है, बंद मन है वही मन तो जानने में असमर्थ है।

खुला हुआ मन चाहिए। खुले हुए मन का अर्थ हैः यह जानना चाहिए कि मैं नहीं जानता हूं। इसलिए न श्रद्धा और न अश्रद्धा, दोनों मेरे पड़ाव नहीं हो सकते। श्रद्धालु को अश्रद्धालु बनाया जा सकता है, कोई कठिनाई नहीं। अश्रद्धालु को श्रद्धालु बनाया जा सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। वे परिवर्तन बहुत आसान हैं। जो आदमी जवानी में अश्रद्धालु होता है, अविश्वासी होता है, बुढ़ापे में श्रद्धालु हो जाता है। जो आदमी आज अश्रद्धा करता है, कल श्रद्धा करने लगता है। श्रद्धा और अश्रद्धा में कोई विरोध नहीं है, एक-दूसरे में यात्रा हो जाती है।

एक गांव में तो एक बार ऐसा हुआ। एक गांव में दो बड़े विचारक थे। ऐसा गांव के लोग कहते थे। विचारक वे न रहे होंगे। एक आस्तिक था, एक नास्तिक था। एक मानता था ईश्वर है और एक मानता था ईश्वर नहीं है। और दोनों के बड़े तर्क थे। अपने-अपने विश्वास के लिए उन्होंने बड़े आर्ग्युमेंट, बड़े तर्क इकट्ठे कर रखे थे। आखिर गांव के लोग उनसे परेशान हो गए, किसकी माने और किसकी न माने। सारे गांव के लोगों ने कहा कि आप दोनों विवाद कर लें, हम सुन लें, और जो जीत जाए उसको हम मान लेंगे। आधा गांव एक को मानता था, आधा गांव दूसरे को। सारा गांव इकट्ठा हुआ एक रात्रि और उन दोनों विद्वानों में विवाद हुआ। आस्तिक ने अपने

तर्क दिए और सिद्ध किया कि ईश्वर है और नास्तिक ने उसके तर्कों का खंडन किया और तर्क दिए कि ईश्वर नहीं है।

दोनों रात भर विवाद करते रहे। सुबह होते-होते दोनों एक-दूसरे के गले लग गए। गांव समझ ही न पाया कि बात क्या हुई। दोनों घर चले गए। बाद में गांव को पता चला, जो आस्तिक था वह नास्तिक के तर्क से प्रभावित होकर नास्तिक हो गया और जो नास्तिक था वह आस्तिक से प्रभावित होकर आस्तिक हो गया। जो आस्तिक था वह नास्तिक हो गया, जो नास्तिक वह आस्तिक हो गया। गांव में झगड़ा वैसा का वैसा कायम रहा।

आस्तिकता नास्तिकता में बदल सकती है। नास्तिकता आस्तिकता में बदल सकती है। इसमें कोई कठिनाई नहीं। दोनों अंधे हैं, उनमें बदलाहट हो सकती है, सजातीय हैं। लेकिन एक तीसरे तरह का मनुष्य भी होता है जो आस्तिक भी नहीं होता और नास्तिक भी नहीं होता। एक तीसरे तरह का मन होता है, एक तीसरे तरह का माइंड होता है, जो कहीं भी न इनकार में, न स्वीकार में अपनी श्रद्धा को रखता है, जो कहता है, मैं नहीं जानता हूं। इसलिए मैं खोजना चाहता हूं, लेकिन मानना नहीं चाहता। इस आदमी को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। यह रिलीजस माइंड का पहला लक्षण है। न वह स्वीकार करता है, न अस्वीकार। लेकिन खोजने को तत्पर और उत्सुक, निरंतर खुले हुए मन से राजी, जहां भी सत्य हो वहां पहुंचने के लिए तैयार, उसका कोई पक्ष नहीं है अपना। ऐसा जो निष्पक्ष मन है वही तो सत्य को खोज सकेगा। जिसका पक्ष है, वह तो बंध गया, उसकी खोज बंद हो गई। जिसकी कोई प्रिज्युडिस है, जिसका कोई आग्रह है, वह तो बंध गया। वह तो कोशिश करेगा कि मेरा आग्रह ही सत्य सिद्ध हो जाए। लेकिन धार्मिक आदमी वह है जिसका कोई आग्रह नहीं, जो यह नहीं कहता कि जो मैं कहता हूं वह सत्य है, बल्कि जो यह कहता है, जो भी सत्य हो, मैं उसे हमेशा खोजने को तैयार हूं, मेरे द्वार खुले हुए हैं।

क्या आपके द्वार खुले हुए हैं?

अगर आपके द्वार खुले हुए हैं तो आपको वह दर्पण उपलब्ध हो सकता है जिसमें आप स्वयं को और सत्य को जान सकें। और उसी सत्य का अनुभव परमात्मा का अनुभव बन जाता है। लेकिन अगर आपके द्वार बंद हैं- अगर आप हिंदू हैं, अगर आप मुसलमान हैं, अगर आप जैन हैं, पारसी हैं, अगर आप आस्तिक हैं, नास्तिक हैं, ये हैं, वे हैं, तो आपके द्वार बंद हैं। और आप चाहे लाख उपाय करें, आप उस दर्पण को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। क्योंकि वह दर्पण केवल निष्पक्ष, निर्दोष मन को ही उपलब्ध होता है।

निष्पक्ष हो जाना जरूरी है। और निष्पक्ष वही हो सकता है जो अपने विश्वासों की व्यर्थता को समझ ले। नहीं तो निष्पक्ष आप कैसे हो सकेंगे? पक्षों के कारण धर्म की हत्या हुई है। धर्म के नाम पर कितनी हत्याएं हुई हैं, कोई हिसाब? कितने मकान जलाएं गए हैं, कितने आदमी मारे गए हैं, कितने बच्चे, कितनी स्त्रियां, लाखों में उनकी संख्या होगी, करोड़ों में। क्या धर्म के नाम पर हत्याएं हो सकती थीं? और अगर धर्म के नाम पर इतनी हत्याएं हो सकती हैं तो फिर अधर्म के नाम पर क्या होगा?

नहीं, ये धर्म के नाम पर हुईं। ये पक्ष के नाम पर हुईं। और पक्ष को हम धर्म समझते रहे हैं, जो कि भूल है। पक्ष धर्म नहीं है। धर्म तो है अत्यंत निष्पक्षता, धर्म तो है अत्यंत अनप्रिज्युडिस्ड हो जाना, सारे पक्षों से मुक्त हो जाना। लेकिन पक्ष से मुक्त होगा वही, जो विश्वास की व्यर्थता को समझ ले। नहीं तो पक्ष से मुक्त नहीं हो सकता। विश्वास बनाता है पक्ष को, अगर विश्वास हट जाए तो पक्ष हट जाता है। तब रह जाता है निपट खालिस मन, बिना बंधा हुआ, बिना किसी जंजीर के खुला हुआ मुक्त। वही जा सकता है परमात्मा तक और उसी तक परमात्मा भी आ सकता है।

मैंने एक छोटी सी कहानी सुनी है।

एक चर्च में एक रात एक आदमी ने द्वार खटखटाया, उसके पादरी ने द्वार खोला। काश, उसे पता चल जाता कि बाहर खड़ा हुआ एक काला आदमी है, तो वह द्वार ही न खोलता। उसने सोचा होगा कि कोई सफेद

आदमी है। वह गोरे लोगों का चर्च था। उसने द्वार खोला, देखा, एक नीग्रो द्वार पर खड़ा है। उसने उस काले आदमी को कहा, कैसे यहां आना हुआ?

उसने कहा, मैं भी भगवान के मंदिर में आना चाहता हूं।

पुराने दिन होते तो वह पादरी कहता, शूद्र हट जा यहां से! यहां तेरे लिए कोई जगह नहीं है! और यहां तू आया, तो सीढ़ियां साफ कर, तेरी छाया पड़ी तो मंदिर अपवित्र हो गया! लेकिन दिन बदल गए हैं। लेकिन आदमी का दिल थोड़े ही बदला है। भाषा बदल गई हैं, हिसाब बदल गए हैं, लेकिन भीतर वही आदमी खड़ा है। उस पादरी ने कहा, मेरे मित्र, उसने नहीं कहा शूद्र, उसने कहा, मेरे मित्र, जरूर भगवान के मंदिर में तुम आना, लेकिन जब तक मन शांत और पवित्र न हुआ हो, तब तक आने से फायदा क्या? तो जाओ, पहले मन को पवित्र और शांत करो, फिर आना। तभी भगवान से मिलना हो सकता है।

उस पादरी ने सोचा, न होगा मन शांत और न होगा पवित्र और न इसे दुबारा दरवाजा खोलने कि जरूरत पड़ेगी।

वह नीग्रो वापस चला गया। महीने पर महीने बीत गए। कोई तीन-चार महीने बाद बाजार में उस पादरी को वह नीग्रो दिखाई पड़ा। देख कर उसे हैरानी हुई! उस आदमी की आंखों में कोई चमक और आ गई थी, वह नीग्रो कुछ और ही तरह का व्यक्तित्व ले लिया मालूम पड़ता था, उसके आस-पास एक बड़ी शांति की, एक बड़ी प्रार्थनापूर्ण हवा थी, उसके आस-पास एक नई सुगंध पैदा हो गई थी जैसे और एक नया आलोक। उस पादरी ने उसे रोका और पूछा, तुम दुबारा नहीं आए?

उस नीग्रो ने कहा, मैं तो आता था, लेकिन बड़ी गड़बड़ हो गई। तुमने कहा था, मन शांत करो और पवित्र, मैं मन को शांत करने में, पवित्र करने में लग गया। मेरे दिन और रात प्रार्थनाओं से भर गए और मेरे मन में एक ही, एक ही प्रार्थना और प्यास काम करने लगी। महीने बीत गए। एक रात मैं सोया, जब सोया तो मन मेरा एकदम शांत और मौन था। रात मैंने एक सपना देखा, सपने में मैंने देखा, परमात्मा मेरे सामने खड़े हैं और मुझसे पूछ रहे हैं कि तू क्यों इतनी प्रार्थनाएं कर रहा है? क्या चाहता है? तो मैंने कहा, मैं जो हमारे गांव का जो चर्च है, जो मंदिर है, उसमें प्रवेश चाहता हूं। तो परमात्मा हंसे और उन्होंने कहा, तू बिल्कुल पागल है! उसमें तेरा प्रवेश न हो सकेगा। मैं खुद दस सालों से कोशिश कर रहा हूं, वह पादरी मुझे घुसने नहीं देता। मैं खुद हार गया हूं कोशिश करके, वह पादरी मुझे अंदर नहीं आने दे रहा। मैं ही हार गया, तेरा पहुंचना बहुत कठिन है। तू वह खोज छोड़ दे। ज्यादा आसान है मेरे पास आ जाना, चर्च में पहुंचना बहुत कठिन है। और उस चर्च में मैं तो हूं भी नहीं, तू पहुंच भी जाएगा तो उसे खाली पाएगा।

असलियत यह है, उस चर्च के पादरी पर न हंसें, आज तक किसी मंदिर के पुजारी ने भगवान को किसी मंदिर में नहीं घुसने दिया। न किसी मस्जिद में और न किसी चर्च में। आदमी ने धर्म के नाम पर जितने धंधे बनाए हैं उनमें कहीं भी भगवान को घुसने का कोई मौका नहीं। क्योंकि जहां परमात्मा होगा, वहां फिर व्यवसाय नहीं हो सकता। और जहां व्यवसाय चलाना है, वहां परमात्मा के लिए जगह नहीं हो सकती। और फिर आदमी के बनाए हुए मंदिर इतने छोटे हैं और परमात्मा है इतना विराट, प्रवेश हो भी कैसे सकता है? आदमी खुद इतना छोटा है, तो उसके मंदिर बड़े नहीं हो सकते। उसके बनाए हुए मंदिर उससे भी ज्यादा छोटे होंगे। क्योंकि बनाने वाला जो भी बनाएगा, खुद से बड़ी चीज कभी नहीं बना सकता, उसकी चीज बनाई हुई होगी वह उससे छोटी होगी। और आदमी खुद इतना छोटा है कि वह परमात्मा के मंदिर बनाए यह बात ही पागलपन की और नासमझी की है। आदमी खुद को मिटा दे तो परमात्मा को पा सकता है लेकिन परमात्मा को खुद बनाने कि कोशिश में लग जाए यह पागलपन है।

इधर पांच-छह हजार वर्षों से हम परमात्मा को गढ़ रहे हैं। हमने फैक्टरियां बनाईं जिनमें हम परमात्मा को बनाते हैं। और उन बनाए हुए परमात्मा के नाम पर मंदिर और मस्जिद बनाते। वे आदमी के बनाए हुए मंदिर और मस्जिद बहुत छोटे हैं, इसलिए आपस में टकरा जाते हैं। परमात्मा इतना बड़ा है कि टकराएगा किससे, उसके बाहर और कोई है ही नहीं। लेकिन मंदिर बहुत छोटे-छोटे हैं वे आपस में टकरा जाते हैं और लड़ जाते हैं। मंदिर हमारे पक्षपात हैं, मंदिर हमारी प्रिज्युडिसेस हैं, मंदिर हमारे विश्वास हैं, मंदिर हमारा ज्ञान नहीं है। क्योंकि जब ज्ञान का मंदिर बनता है तो आदमी पाता है वह उसके खुद के भीतर है और सबके भीतर है। तब उसे बनाना नहीं पड़ता। और जब ज्ञान से परमात्मा का अनावरण होता है, तो उसकी मूर्ति नहीं गढ़नी नहीं होती, क्योंकि उसकी कोई मूर्ति नहीं हो सकती। और उसका नाम नहीं रखना होता, क्योंकि उसका कोई नाम नहीं हो सकता। जब ज्ञान के परमात्मा का अनुभव होता है, तो पाया जाता है वही है, वही सब कुछ है। लेकिन जब अज्ञान परमात्मा को गढ़ता है, तो बड़े खतरे हो जाते हैं। हमारे सारे विश्वास अज्ञान में गृहीत होते हैं और हमारे सब मंदिर अज्ञान में बनते हैं। और हमारे सारे पक्ष और हमारे सारे विश्वास अज्ञान की संतति है। इसलिए जो इन विश्वासों को पकड़े बैठे रहता है, उसने अपने अज्ञान को ही मजबूत कर लिया। अज्ञान को तोड़ना है, तो विश्वास और पक्षों को ता.ेड देना जरूरी है।

चाहिए एक निष्पक्ष मन, चाहिए एक निर्दोष मन, चाहिए एक मुक्त और खुला हुआ मन, वही द्वार बनता है, वही दर्पण बनता है खुद को जानने का।

तो पहला सूत्र आज की सुबह आपसे कहना चाहता हूंः खुला हुआ मन, बंद मन नहीं।

और हम सबके बंद मन हैं। बहुत-बहुत बंद हैं। एकदम बंध हैं, कहीं कोई रंध्र भी नहीं। द्वार तो बड़ी बात कि सूरज की किरण भीतर पहुंच सके। और भीतर सब तरफ से बंद करके अपने विश्वासों को पकड़े हुए हम जीए चले जाते हैं। जी लेते हैं नाम को; लेकिन जीवन को नहीं जान पाते। जी लेते हैं अंधेरे में; आलोक से परिचित नहीं हो पाते। जी लेते हैं शब्दों में; शब्द से कोई साक्षात नहीं हो पाता। तो निवेदन करूंगा, थोड़ा विचार करेंगे। और मेरे कहने से कोई विश्वास छोड़ देगा तो यह नया विश्वास हो जाएगा। अगर मेरी बात मान ली और विश्वास छोड़ दिया, तो गलती हो गई, यह नया विश्वास हो जाएगा। मेरी बात पर विश्वास नहीं कर लेना।

आसान है यह। सारे मुल्क में जिन मित्रों से मैं निरंतर मिल रहा हूं, उनमें मैं देखता हूं, वे मेरी बात मान लेते हैं, वे विश्वास छोड़ देते हैं मेरे पर विश्वास कर लेते हैं। भूल फिर हो गई। कुएं से बचे और खाई में गिर गए। उससे कोई फर्क न हुआ। मैं कौन हूं, जिस पर आप विश्वास करें? कोई भी कारण नहीं है। मैं जो कह रहा हूं उस पर विश्वास नहीं कर लेना है, उस पर सोचें, विचार करें, चिंतन करें, मनन करें, एक-एक बात को खोजें। और खोजने और विचार करने के लिए जरूरी है, जरूरी है कि बहुत जल्दी न करें, अधैर्य न बरतें। मैंने कहा और आपने मान लिया, तो बहुत अधैर्य हो गया, बहुत जल्दी हो गई। बहुत धैर्य से। मैंने कहा और आपने इनकार कर दिया कि नहीं, ये सब गलत बातें हैं, तो भी जल्दी हो गई, अधैर्य हो गया। तो अभी यहीं से निर्णय ले कर न चले जाएं कि मैंने जो कहा वह सच था या झूठ। जिस आदमी ने भी इतनी जल्दी निर्णय लिया, समझें कि उसने मेरी बात सुनी भी नहीं, समझी भी नहीं। तो जल्दी न करें। हमारी आदतें तो गलत हैं, मैं यहां बोल रहा हूं, आप वहां निर्णय कर रहे होंगे कि क्या ठीक है और क्या गलत है। ये गलत आदतें हैं। सुन लें चुपचाप, चले जाएं चुपचाप, उसे मन में सोचें, देखें, पहचानें, क्या कहा है? क्यों कहा है? कितने दूर तक सच है? और उसकी सचाई की जांच होगी आपके भीतर। अपने विश्वासों को उखाड़ें और देखें, कौन सा विश्वास है जो आपका अपना है? कौन सा जानना है जो आपका अपना है? और जो आपका अपना नहीं है वह आपकी आत्मा नहीं बन सकेगा। जो आपका अपना है वही आपका आत्म बन सकता है, वही आपकी आत्मा बन सकता है।

एक संन्यासियों का आश्रम था। एक युवा संन्यासी आया उस आश्रम में नया-नया। पंद्रह दिन रहा, ऊब गया, घबड़ा गया, और उसने निर्णय किया कि मैं जाऊं। क्योंकि जो वृद्ध गुरु था वहां, उसकी थोड़ी सी बातें थीं, जो दस-पंद्रह मिनट में पूरी हो जाएं। पंद्रह दिन सुनते-सुनते थक गया, वही बातें, वही बातें, कुछ सीखने को वहां नहीं मालूम पड़ता था। तो सोचा उसने कि कल सुबह होते ही निकल जाऊं, यह स्थान मेरे लिए नहीं है। मैं कोई और जगह खोजूं, जहां कुछ सीखा जा सके, जाना जा सके। लेकिन रात एक घटना घट गई और फिर वह उस आश्रम को छोड़ कर कभी नहीं गया। रात एक और नया भटकता हुआ संन्यासी उस आश्रम में आ गया। उस आश्रम के अंतेवासियों की रात बैठक हुई, उस नये आए संन्यासी ने दो घंटे तक बड़ी सूक्ष्म बातें कहीं-वेदांत की, उपनिषदों की, बड़ी सूक्ष्म चर्चा की, बड़ा विश्लेषण किया। वह जो युवा सुबह छोड़ देने को था, उसने सुनी वे बातें, प्रभावित हुआ, हृदय में उसके बातें वे पहुंच गईं और उसके मन को हुआ कि गुरु हो तो ऐसा हो, जो इतना जानता हो, इतना विस्तीर्ण हो जिसका जानना, और उसके मन में यह भी खयाल आया कि मेरा वृद्ध गुरु बैठा हुआ सुन रहा है, उसके मन को कैसा दुख न होता होगा, कैसा अपमान न लगता होगा, कैसी हीनता न मालूम होती होगी इसके समक्ष। दो घंटे के चर्चा बाद उस बोलने वाले संन्यासी ने वृद्ध गुरु की तरफ देखा और कहा, कैसी लगी मेरी बातें? उस बूढ़े ने जो कहा वह मन में रख लेने जैसा है, उस बूढ़े ने कहा, मेरे मित्र, मेरे बेटे, दो घंटे से तुम्हारी बात सुनने की कोशिश कर रहा हूं, लेकिन तुम तो कुछ बोलते ही नहीं।

तो उस युवा ने कहाः आप पागल हैं क्या? दो घंटे से मैं ही बोल रहा हूं और कौन बोल रहा है?

उस वृद्ध ने कहाः तुम्हारे भीतर से शास्त्र बोलते हैं, सिद्धांत बोलते हैं, लेकिन तुम जरा भी नहीं बोल रहे हो। क्योंकि तुमने जो बोला उसमें तुम्हारा जाना हुआ कुछ भी नहीं। तो तुम्हें भ्रम है कि तुम बोल रहे हो। तुम बिल्कुल भी नहीं बोल रहे हो, तुम एक यंत्र की भांति काम कर रहे हो, एक मशीन की भांति। जिसमें से शास्त्र दोहराए जा रहे हैं, शब्द जो सीखे गए हैं, वे बोले जा रहे हैं, लेकिन तुम कहां हो, तुम तो मौजूद भी नहीं हो। क्योंकि अगर तुम मौजूद भी होते, तो तुम्हें यह दिखाई पड़ जाता कि तुम यह मशीन का काम कर रहे हो, एक मनुष्य का नहीं। तो जाओ, अभी खोजो उसे जो तुम्हारा जानना बन सके और जब वह तुम्हारा जानना बन जाएगा, तो मैं कहूंगा कि तुम बोले।

यही मैं आपसे भी कहता हूं। देखना, खोजना, ये जो मेरे भीतर विश्वास, विचार, शब्द इकट्ठे हैं, ये मेरे हैं? अगर ये मेरे नहीं हैं, अगर इनमें से कुछ भी मेरा जाना हुआ नहीं है, तो मेरा जीवन एक निष्फल चेष्टा है, जिसमें मेरी अपनी कोई अनुभूति नहीं, अपनी कोई संपदा नहीं। तो मैं उस उधार शब्दों और उधार संपत्ति पर जी रहा हूं, तो क्या मैं वास्तविक जीवन को जान सकूंगा? क्या ये उधार शब्दों के आधार पर सत्य को पाया जा सकेगा? क्या ये सीखे गए शब्द और इनका दोहराना, मुझे कहीं ले जाएगा? क्या ये विश्वास जो मेरे नहीं हैं, मेरी आत्मा के उदघाटक बन सकेंगे? इसको खोजना जरूरी है। इसे एक-एक विश्वास को जांचना जरूरी है, कसना जरूरी है। कसौटी यही है कि क्या है मेरा अनुभव? और जो मेरा अनुभव नहीं, उससे छुटकारा बहुत आवश्यक है। क्योंकि जो मेरा अनुभव नहीं है वही रोक लेगा उसे आने से जो मेरा अनुभव हो सकता है।

एक अंतिम छोटी सी बात।

एक आदमी एक कुआं खोद रहा था, तो मैंने उसे कुआं खोदते देखा। उसने कंकड़-पत्थर खोद कर बाहर निकाल दिए, मिट्टी खोद कर बाहर निकाल दी, वह खोदता चला गया, खोदता चला गया, आखिर मिट्टी और पत्थर की पर्तें अलग हो गईं, तो पानी के झरने फूट पड़े और वह कुआं पानी से भर गया। फिर मैंने देखा, एक आदमी हौज बना रहा था, तो वह ईंट-पत्थर लाया, मिट्टी लाया, उसने दीवालें बनाईं, ईंट-पत्थर जोड़ कर दीवालें खड़ी कीं और फिर पानी लाया और उस हौज में भर दिया। हौज में भी पानी था और कुएं में भी। और मैं

सोचने लगा, दोनों के पानी में कोई फर्क है या नहीं? उलटी सी बात थी, कुएं से ईंट-पत्थर बाहर निकाल दिए थे, पत्थर-मिट्टी बाहर फेंक दी, तो भीतर जो पानी छिपा था वह प्रकट हो गया। और हौज में ईंट-पत्थर लाने पड़े, जोड़ कर दीवाल बनानी पड़ी और तब पानी लाकर उसमें भर देना पड़ा। कुएं में पानी आया, हौज में पानी लाना पड़ा। हौज में ईंट-पत्थर भी लाकर जोड़ने पड़े, कुएं से ईंट-पत्थर निकाल कर बाहर फेंक देने पड़े। कुएं में जीवित पानी है, उस पानी कि जड़ें हैं, उस पानी के झरने हैं जो दूर सागरों से जुड़े हैं जो अनंत हैं। हौज की कोई, कोई जीवन नहीं, हौज की कोई आत्मा नहीं, वह किसी सागर से नहीं जुड़ा है, उसमें उधार पानी भरा हुआ है। हौज का पानी सड़ जाएगा। कुएं का जीवित पानी है।

ज्ञान भी फिर मैंने जाना दो ही तरह का होता है--हौज की तरह और कुएं की तरह का। जो ज्ञान हम दूसरों से सीख लेते हैं वह हौज की तरह का ज्ञान है। उसमें मस्तिष्क में शब्दों की दीवाल बना कर भीतर ज्ञान को भर लेते हैं उधार, वह सड़ जाता है। पंडित का ज्ञान ऐसा ही होता है जो दूसरों से सीखा होता है। इसलिए पंडित से ज्यादा विकृत मस्तिष्क और किसी का भी नहीं होता है, उसका शब्द उधार होता है।

ज्ञानी का ज्ञान बहुत और तरह का है, कुएं की तरह का है। वह अपने चित्त में जितने भी मिट्टी-पत्थर इकट्ठे हो गए हैं बाहर से, उनको निकाल कर फेंक देता है, खोदता चला जाता है, भीतर जो भी बाहर का है निकाल कर फेंकता जाता है, जो भी बाहर से आया उसे बाहर फेंक देता है। तब एक दिन उसके भीतर उन झरनों का जन्म होता है जो उसके भीतर छिपे थे, जो उसके प्राण हैं, जो उसकी आत्मा हैं। और जब भी झरने खुलते हैं तो उन्हीं झरनों में वह आनंद, वह आलोक बहा चला आता है जिसे कोई परमात्मा कहे, कोई सत्य कहे। और वह सत्य जो स्वयं के झरनों से उपलब्ध होते हैं, और वह जल-स्रोत जो खुद के भीतर खोज लिया जाता है, वही मुक्ति बन जाता है।

वही है जीवन। हम अपने जीवन को दबाए बैठे हुए हैं। उसे उघाड़ना है। वही है अमृत, उसकी कोई मृत्यु नहीं। वही है आनंद, क्योंकि वही है आत्मा। उस आत्मा की खोज में जो दर्पण निर्मित करना है उसका पहला सूत्र मैंने आज आपसे कहा। और इन तीन दिन की चर्चाओं में और कुछ सूत्रों पर आपसे कुछ बात करूंगा। उनको सोचेंगे, विचारेंगे। हो सकता है मेरी सारी बात गलत हो। और अगर आपके सोचने-विचारने से यह पता चल जाए कि वे गलत हैं, तो आप एक कदम आगे बढ़ जाएंगे। क्योंकि इतना सोच-विचार आपके भीतर विवेक को पैदा कर देगा। और हो सकता है मेरी बात सोच-विचार से उसमें से कुछ आपको ठीक दिखाई पड़े। अगर आपके सोच-विचार से उसमें कुछ ठीक दिखाई पड़ा, तो वह आपका हो जाएगा, मेरा नहीं रह जाएगा, उससे मेरा कोई संबंध नहीं। और जो आपका है वही सत्य है और शेष सब असत्य है।

मेरी इन थोड़ी सी प्रारंभिक बातों को आपने इतनी शांति और मौन से सुना, उसके लिए मैं बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

दूसरा प्रवचन

धर्म भय पर खड़ा नहीं हो सकता

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी कहानी से मैं संध्या की इस बातचीत को शुरू करूंगा।

एक राजदरबार में एक बहुत अनूठे आदमी का आना हुआ। उस आदमी का अनूठापन इस बात में था कि उसने उस सम्राट को कहाः तुम इतनी बड़े पृथ्वी के अकेले मालिक हो, तुमसे बड़ा सम्राट कभी हुआ नहीं, तो यह शोभा नहीं देता है कि तुम मनुष्यों जैसे वस्त्र पहनो। मैं तुम्हारे लिए देवताओं के वस्त्र लाकर दे सकता हूं।

देवताओं के वस्त्र न तो कभी देखे गए थे और न सुने गए थे। राजा के अहंकार को प्रेरणा मिली और उसने कहाः कितना भी खर्च करना पड़े, कोई भी व्यवस्था करनी पड़े, मैं तैयार हूं, लेकिन देवताओं के वस्त्र मुझे चाहिए। वह व्यक्ति राजी हो गया कि छह महीने के भीतर मैं वस्त्र लाकर दे दूंगा, लेकिन जो भी खर्च उठाना पड़ेगा; कितना ही खर्च हो उसकी कोई गिनती न रखी जाए, छह महीने के बाद मैं वस्त्र ला दूंगा। राजा राजी हो गया। उसके दरबारियों ने समझा कि यह निरा धोखा है। देवताओं के वस्त्र कहां से लाए जा सकते हैं? यह सिर्फ राजा को लूटने का उपाय है।

... इसलिए दरबारी कुछ कर भी न सके। हजारों रुपये प्रतिदिन वह आदमी ले जाने लगा। देवताओं तक पहुंचने की व्यवस्था करनी थी। फिर देवताओं के द्वारपालों को रिश्वत देने की व्यवस्था करनी थी। फिर वस्त्रों के मूल्य चुकाने थे। और ऐसे रोज-रोज काम निकलने लगे।

लेकिन राजा भी हिम्मत का होगा। छह महीने तक उस आदमी ने जो भी रुपये मांगे उसने दिए। छह महीने के आखिरी दिन उसके घर पर सिपाहियों का पहरा लगा दिया। बहुत संभावना थी कि वह आदमी भाग जाए। लेकिन नहीं, राजा गलती में था, उसके दरबारी गलती में थे, वह आदमी भागा नहीं। नियत दिन पर, नियत समय वह एक बहुमूल्य पेटी को लेकर राजदरबार में उपस्थित हो गया। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए थे। दरबार में बड़ी चहल-पहल थी। हर आदमी उत्सुक था। वस्त्र ले आए गए थे। देवताओं के वस्त्र पृथ्वी पर पहली दफा आए थे। उसने जाकर बीच दरबार में अपनी पेटी रख दी, पेटी का ताला खोला और राजा से कहा, आप आगे आ जाइए और अपने वस्त्र उतार दीजिए, मैं देवताओं के वस्त्र देता हूं, इन्हें पहन लीजिए। लेकिन एक बात मैं बता दूं, देवताओं ने कहा है, ये वस्त्र केवल उन्हीं लोगों को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। ये वस्त्र सभी को दिखाई पड़ने वाले नहीं हैं। ये कोई सामान्य वस्त्र नहीं हैं। तो जो अपने ही पिता से पैदा हुए हैं उनको ये दिखाई पड़ेंगे।

उसने वस्त्र निकालने शुरू किए। उसने कोट निकाला उस पेटी में से, उसके हाथ तो खाली दिखाई पड़ते थे। सारे दरबार के हर व्यक्ति को खाली दिखाई पड़ रहे थे। राजा को भी खाली दिखाई पड़ रहे थे। लेकिन उसने कहाः यह लीजिए कोट, अपना कोट अलग कर दें और इसे पहन लें। राजा को अपना कोट अलग कर देना पड़ा। हाथ खाली दिखाई पड़ रहे थे, उसमें कोई कोट नहीं दिखाई पड़ता था। लेकिन राजा ने सोचा, जब सारे लोग कुछ भी नहीं कह रहे हैं, बल्कि दरबारी जोर से तालियां बजाने लगे और कहने लगे, इतने अदभुत वस्त्र कभी नहीं देखे गए। प्रत्येक को मालूम पड़ रहा था वस्त्र नहीं हैं, लेकिन कौन, कौन यह कहलवाए कि वह अपने पिता से पैदा नहीं हुआ है? यह भय, यह फियर भीतर काम करने लगा। और जब सब लोगों को दिखाई पड़ रहे हों तो मैं क्यों उलझन में पड़ूं? या आप क्यों उलझन में पड़ें? या कोई भी क्यों उलझन में पड़े? प्रत्येक ने यही सोचा। किसी को भी वस्त्र दिखाई नहीं पड़ रहे थे। लेकिन उस दरबार में तालियां गूंजने लगीं और वस्त्रों की प्रशंसा होने लगी और प्रत्येक व्यक्ति दूसरे पड़ोसी से तेजी से प्रशंसा करने लगा, ताकि यह तय हो जाए कि वह अपने ही पिता का पुत्र है।

राजा को भी मजबूरी थी। वह भी हंसा और उसने उस कोट की प्रशंसा की जो कहीं था ही नहीं। उसने अपना कोट उतार दिया और वह कोट पहन लिया। लेकिन राजा को पता न था कि बात और आगे बढ़ेगी। राजा का कमीज भी उतरवा लिया गया और झूठा कमीज उसे निकाल कर दिया गया वह भी उसे पहनना पड़ा। बात शुरू हो गई थी और अब बीच में इनकार करना कठिन था। धीरे-धीरे राजा के सारे वस्त्र उतर गए, वह नग्न खड़ा हो गया।

सारा दरबार देख रहा था कि वह नंगा खड़ा है। राजा देख रहा था कि वह नंगा खड़ा है। लेकिन सारे दरबारी ताली बजा रहे थे और वह वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे थे। और वह राजा भी मुस्कुरा रहा था। उसके प्राणों पर आ बनी थी, वह नग्न खड़ा था। लेकिन यह बात कही नहीं जा सकती थी। भय काम कर रहा था। अपने हाथों अपने पिता पर संदेह! अपनी बेइज्जती और अपमान! और इन सारे लोगों के सामने! अपने ही नौकरों-चाकरों के सामने! और जब कि सारे लोग तालियां बजा रहे थे।

उस आदमी ने जो यह वस्त्र लाया था, कहा, पृथ्वी पर पहली बार देवताओं के वस्त्र आए हैं और पहली बार किसी मनुष्य को यह सौभाग्य मिला है, इसलिए उचित है कि आपका जुलूस निकाला जाए। पूरे राजधानी के लोग ताकि देख लें इन वस्त्रों को। वह नग्न राजा बहुत घबड़ाया, लेकिन मजबूरी थी। उसे राजी हो जाना पड़ा। और उस नंगे राजा का जुलूस उस दिन उस राजधानी में निकला। और उस नगर में हर आदमी ने ताली बजाई और कहा कि ये वस्त्र बहुत सुंदर हैं, ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं गए। धन्य है हमारा राजा! और हर आदमी जानता था कि वह राजा नंगा है। लेकिन किसी आदमी में कहने का यह साहस नहीं था कि राजा नंगा है और वस्त्र नहीं हैं।

कौन इसे कहता? कौन इस बात को अपने ऊपर लेता? कौन इस जिम्मेवारी में पड़ता? सभी भयभीत थे। और जो भयभीत है उससे कुछ भी मनवाया जा सकता है। भय कुछ भी बात मानने को राजी हो सकता है। ऐसे वस्त्रों को मानने को राजी हो सकता है जो कहीं नहीं हैं। ऐसे स्वर्ग और नरक को मानने को राजी हो सकता है जो कहीं नहीं हैं। ऐसी कल्पनाओं और झूठी बातों को मानने को राजी हो सकता है जिनमें कोई सच्चाई नहीं है। लेकिन झूठी बातों को मनवाने के पहले एक बात जरूरी है कि चित्त भयभीत हो जाए, फियर से भर जाए।

यह कहानी मैं इसलिए कह रहा हूं कि जमीन पर मनुष्य ने बहुत सी ऐसी बातें मान रखी हैं, जिनके मानने में भय के अतिरिक्त और कोई भी कारण नहीं है। और उस राजधानी में जिन लोगों ने उन वस्त्रों की तारीफ की थी, आप अपने को उन लोगों से भिन्न मत समझ लेना। आपने भी बहुत से ऐसे वस्त्रों की तारीफ की है जिनका कोई अस्तित्व नहीं है। और आपको दिखाई भी पड़ता है, लेकिन आपके पड़ोसी तारीफ कर रहे होते हैं, और तब आप इतना साहस नहीं जुटा पाते कि भीड़ से अलग खड़े हो जाएं।

भीड़ बहुत बड़ी कमजोरी बन जाती है, भय और भीड़ और चारों तरफ एक ही बात को कहते हुए लोग, फिर इतना साहस जुटा पाना मुश्किल हो जाता है कि आप अकेले खड़े हो जाएं और कह दें कि ये वस्त्र झूठे हैं और राजा नंगा है।

उस राजधानी में भी कोई इतना साहस नहीं जुटा पाया था। एक छोटे से बच्चे ने हिम्मत की थी और अपने पिता से कहा था, पिताजी, मुझे तो राजा नंगा दिखाई पड़ रहा है। लेकिन उसके पिता ने कहा, चुप रह, तू नासमझ है, तू कुछ भी नहीं जानता। मैं अनुभव से कहता हूं, मेरी उम्र मैंने ऐसे ही नहीं गुजार दी है, ये बाल मैंने ऐसे ही धूप में नहीं पका लिए हैं, वस्त्र हैं और बहुत सुंदर हैं। और चुप रह और यह बात मत उठा। तू अभी बच्चा है और तू कुछ भी नहीं जानता है।

बच्चे कभी-कभी सच्ची बातें कहते भी हैं तो बूढ़े उन्हें कहने नहीं देते। क्योंकि बच्चों को पता नहीं है उस भय का जो बूढ़ों को पता है। और बच्चों में अभी वह समझदारी नहीं आई, वह समझदारी जिसका चालाकी दूसरा नाम, वह कनिंगनेस अभी उनमें पैदा नहीं हुई जो झूठी बातों को सच कह सके। उन्हें कई बार सच्चाइयां दिखाई पड़ जाती हैं।

एक छोटे से बच्चे को मंदिर में ले जाएं और एक मूर्ति के सामने कहें कि ये भगवान हैं, प्रणाम करो। वह बच्चा अपने मन में हंसता है और देखता है कि एक मूर्ति रखी हुई है, लेकिन उससे कहा जा रहा है कि ये भगवान हैं और प्रणाम करो। और अगर वह बच्चा कहे कि मुझे तो पत्थर की मूर्ति दिखाई पड़ती है, भगवान नहीं। तो हम कहेंगे, तू नासमझ है, तुझे अभी पता नहीं, हम अपने अनुभव से कहते हैं यही भगवान हैं। और हम उस बच्चे की गर्दन को जबरदस्ती झुकाएंगे। और थोड़े दिनों में बच्चा भी बड़ा हो जाएगा। समझदारी में बड़ा हो जाएगा। और जो आदमी समझदारी में जितना बड़ा हो जाता है उतना चालाक हो जाता है, उतनी सच्चाई से दूर हो जाता है।

उस गांव के सब लोग समझदार थे इसलिए किसी ने भी नहीं कहा कि वस्त्र झूठे हैं। एक नासमझ बच्चे ने यह बात उठाई थी, लेकिन उसकी आवाज दबा दी गई।

सारी दुनिया में यह हुआ है। मनुष्य को भयभीत करके बहुत से असत्य उसे सिखा दिए गए हैं। और भीड़ के दबाव में, भीड़ के वजन में, एक व्यक्ति इतनी नैतिक हिम्मत नहीं कर पाता कि वह खड़ा हो जाए और कह सके वह जो उसे दिखाई पड़ता है। वह अकेला पड़ जाएगा।

धार्मिक आदमी मैं उसे कहता हूं, जो अकेले होने की हिम्मत करता है। जो आदमी भीड़ को स्वीकार कर लेता है वह आदमी धार्मिक नहीं है, वह आदमी कभी धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक आदमी का पहला लक्षण है, अकेले खड़े होने का साहस। जो उसे दिखाई पड़ता है, उसे स्वीकार करने का साहस और जो उसे दिखाई नहीं पड़ता, उसे अस्वीकार करने का भी साहस धार्मिक आदमी की बुनियादी शर्तें हैं।

लेकिन हम तो जिन धार्मिक लोगों को जानते हैं, वे तो कोई भी अकेले खड़े हुए दिखाई नहीं पड़ते। वे तो सब भीड़ के साथ जुड़े हुए हैं। हिंदुओं की भीड़ है, मुसलमानों की भीड़ है, ईसाइयों की भीड़ है; जैनों की, बौद्धों की भीड़ है और हर आदमी किसी न किसी भीड़ का हिस्सा है और जो भीड़ कहती है वही व्यक्ति भी कहता है। और भीड़ में हर आदमी इसीलिए कहता है कि बाकी लोग भी वही कह रहे हैं।

हर आदमी जानता है, हर आदमी को दिखाई पड़ती हैं बातें। आंखें अंधी नहीं हैं, और कान बहरे नहीं हैं, और मस्तिष्क सोचता है। लेकिन चारों तरफ सारे लोग वही कहते मालूम पड़ते हैं और तब व्यक्ति बड़ा अकेला पड़ जाता है।

इसलिए मैं कहूंगा, पहली बात, और उसी पर आज की संध्या आपसे मुझे बात करनी है। और वह यह है, भय। फियर धार्मिक आदमी का लक्षण नहीं है, क्योंकि जो भयभीत है वह कभी सत्य को नहीं खोज सकेगा और न सत्य को जान सकेगा। जो भयभीत है वह कभी इस योग्य नहीं हो पाता कि वह सत्य का साक्षात कर सके। उसका भय असत्य को ही मान लेने को मजबूर कर देता है।

लेकिन हमें तो सिखाया जाता रहा है, ईश्वर से भयभीत होने को। कहा जाता है गॉड-फियरिंग होने को। कहा जाता है ईश्वर-भीरु होने को। ये शब्द अत्यंत झूठे हैं। गॉड-फियरिंग, ईश्वर-भीरु से ज्यादा झूठा और अपमानजनक कोई शब्द नहीं हो सकता। क्योंकि जो व्यक्ति भयभीत है, वह व्यक्ति तो कभी ईश्वर के निकट पहुंच ही नहीं सकता।

ईश्वर और व्यक्ति के बीच भय का कोई संबंध नहीं हो सकता। प्रेम का संबंध तो हो सकता है लेकिन भय का नहीं। और स्मरण रखें, प्रेम और भय सर्वाधिक विरोधी बातें हैं। जहां प्रेम है वहां कोई भय नहीं और जहां भय है वहां कोई प्रेम नहीं। जहां भय है वहां घृणा तो हो सकती है लेकिन प्रेम नहीं हो सकता। और जहां प्रेम है वहां भय कैसा? वहां फियर कैसा? जिसे हम प्रेम करते हैं उसके प्रति हमारे चित्त के सारे भय विलीन हो जाते हैं, उससे हमें कोई भय नहीं रह जाता। और जिससे हम भय करते हैं, उसके प्रति हमारे मन में घृणा पैदा होती है। उससे हमारे बहुत गहरे मन में शत्रुता होती है। और जिससे हम भय करते हैं, उसके निकट तो हम कभी पहुंच ही नहीं सकते।

लेकिन हजारों साल से आदमी को सिखाया जाता रहा है वह भयभीत हो। वह स्वर्ग से डरे कि कहीं स्वर्ग न खो जाए, वह नरक से डरे कि कहीं नरक में न पड़ जाए, वह ईश्वर से डरे, वह डरे इसलिए ताकि वह अच्छा

हो सके? और डर से कभी कोई अच्छा हो सकता है? डर तो बुराई की जड़ है। और आदमी को हम सिखाते रहे हैं, डरो, ताकि तुम भले हो सको। और भले आदमी का पहला सूत्र होता है कि वह डरता नहीं।

यह शिक्षा बड़ी उलटी है। क्योंकि जो डरता है वह सच्चा ही नहीं हो सकता, और जो सच्चा नहीं हो सकता वह भला कैसे हो सकता है? लेकिन यह कंट्राडिक्शन, यह विरोध हमें दिखाई नहीं पड़ता रहा। और इसलिए पांच हजार सालों की इस गलत शिक्षा का यह परिणाम है कि दुनिया रोज से रोज बुरी होती गई है।

धर्म भय पर खड़ा था इसलिए धर्म झूठा सिद्ध हुआ। धर्म की सारी शिक्षा भय पर खड़ी हुई थी। हम लोगों को समझाते रहे-पाप करोगे तो नरक के कष्ट झेलने पड़ेंगे, नरक की अग्नि सहनी पड़ेगी, कड़ाहों में, जलते हुए कड़ाहों में, तेल में चुड़ाए जाओगे, आग में डाले जाओगे। आदमी को हम भयभीत करते रहे कि घबड़ा जाओ, घबड़ा जाओ ताकि पाप न कर सको। और प्रलोभन देते रहे स्वर्ग का, वहां अप्सराएं उपलब्ध होंगी, जिनकी उम्र कभी ढलती नहीं, जो सोलह वर्ष की ही बनी रहती हैं। और वहां शराब के चश्मे बहते हैं, स्वर्ग में झरने बहते हैं, न केवल पीना बल्कि डूबना और नहाना उनमें। और वहां कल्पवृक्ष हैं जिनके नीचे बैठ कर सभी इच्छाएं तत्क्षण पूरी हो जाती हैं। और सभी सुख के साधन हैं वहां।

स्वर्ग का हम प्रलोभन देते रहे आदमी को। अच्छे बनो ताकि स्वर्ग मिल सके, बुराई से बचो ताकि नरक जाने से बच सको। इस भय पर और प्रलोभन पर, और भय और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जिस चीज से हम भयभीत होते हैं उससे उलटी चीज से हम प्रलोभित होते हैं। और जिस चीज से हमारे मन में लोभ पैदा होता है उसके खो जाने से डर पैदा होता है। लोभ और प्रलोभन एक ही सिक्के के दो हिस्से हैं। भय और प्रलोभन, स्वर्ग और नरक एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और आज तक हमने आदमी के मन को इन्हीं दो सिक्कों के नीचे दबाने की कोशिश की है और इसका परिणाम यह हुआ कि आदमी धार्मिक नहीं हो सका। हो ही नहीं सकता था। क्योंकि जहां लोभ है और जहां भय है वहां धर्म कहां?

लेकिन हजारों वर्ष तक इन शब्दों के दोहराए जाने के कारण, बात बार-बार दोहराए जाने के कारण हम यह भूल ही गए कि हम सोच लें कि हम अधार्मिक क्यों होते जा रहे हैं। हम अधार्मिक रहे हैं, रहेंगे; जब तक भय से धर्म का छुटकारा नहीं हो जाता। जब तक हम मनुष्य के मन को फियरलेस, अभय उपलब्ध नहीं करा देते तब तक कोई आदमी धार्मिक नहीं हो सकेगा।

और चूंकि हर मुल्क में भय के अलग-अलग कारण हैं इसलिए हमें अलग-अलग स्वर्ग और नरक भी बनाने पड़े। अगर तिब्बती से हम पूछें कि तुम्हारा नरक कैसा है? तो वह कहता है, एकदम ठंडा, बर्फ जैसा ठंडा। तिब्बतियों का नरक गर्म नहीं है, क्योंकि तिब्बत में गर्मी भय नहीं है बल्कि आनंद है। तिब्बत में ठंड भय है। लोग ठंड से परेशान हैं तो उनके नरक में उन्होंने बर्फ जमा दिया है जो कभी नहीं पिघलता। और उस बर्फीली घाटियों में, नरक में डाल दिए जाएंगे लोग जो पाप करेंगे।

तिब्बती आदमी डरता है ठंड से, तो उनका नरक ठंडा है। हम डरते हैं गर्मी से, सूरज तपता है और हम झुलस जाते हैं, तो हमारा नरक गरम है, वहां कड़ाहे जल रहे हैं और आग जल रही है। ये हमारे भय के ऊपर खड़े हुए नरक हैं, इसलिए अलग-अलग हैं। तिब्बतियों का नरक वही नहीं हो सकता जो हमारा नरक है, क्योंकि गर्म स्थान में वे बड़े प्रसन्न होकर नाचने लगेंगे। और अगर हमको हिमाच्छादित घाटियां मिल जाएं तो हम शायद समझेंगे हम कोई हिल-स्टेशन पर आ गए हैं, नरक में नहीं। हम शायद हिमालय की यात्रा को आ गए हैं।

चूंकि हमारे भय हर मुल्क में अलग हैं, इसलिए अगर दुनिया भर के नरकों का इतिहास आप पढ़ेंगे, तो यह समझने में आसानी हो जाएगी कि जिस देश में जो भय है वही उस देश का नरक बन गया। और जिस देश में जिस चीज का प्रलोभन है, वही उस मुल्क के लिए स्वर्ग बन गया।

स्वर्ग और नरक हमारे भय और प्रलोभन के विस्तार हैं। और इनके आधार पर हमने कोशिश की आदमी को धार्मिक बनाने की। यह आधार ही झूठा था। इसलिए पांच हजार साल की संस्कृतियां नष्ट हो गईं, असफल हो गईं, विफल हो गईं। क्योंकि यह आधार ही झूठा था।

आदमी धार्मिक भय से नहीं बनता, आदमी धार्मिक अभय से बनता है। अभय कैसे उपलब्ध हो? और भय क्यों है? कैसे छूटे? कैसे हम उसके बाहर हो जाएं? कौन से कारण हैं जिनकी वजह से हम भयभीत हैं? और उन भयभीत होने की जो चित्त-दशाएं हैं वे हमारे शोषण का, शोषण की बुनियाद बन गई हैं।

पुरोहित और जो लोग धर्म का व्यवसाय करते हैं वे भलीभांति समझ गए हैं कि आदमी के भय के कौन से कारण हैं? और आदमी के शोषण के लिए उन्होंने उनका उपयोग कर लिया है। दुनिया में राजनीतिज्ञों या तथाकथित धार्मिक लोगों ने जो भी शोषण किया है वह सब भय के आधार पर किया है।

एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्म-कथा में लिखा हैः अगर तुम्हें किसी भी कौम से कोई काम करवाना हो, तो उसे किसी काल्पनिक शत्रु के नाम से भयभीत कर दो, फिर वह कौम कुछ भी करने को राजी हो जाएगी। और यह उसने अपने अनुभव से लिखा है। उसने लिखा है कि अगर किसी कौम को युद्ध पर लड़वाना हो, तो एक झूठा शत्रु पैदा कर दो, जिससे वह भयभीत हो जाए। अगर सच्चा शत्रु मिल जाए तब तो ठीक, नहीं तो झूठा शत्रु खड़ा कर दो। कह दो इस्लाम खतरे में है। कह दो हिंदू धर्म खतरे में है। कह दो भारत खतरे में है कि पाकिस्तान खतरे में है। और बता दो कि खतरा कौन पैदा कर रहा है। दुश्मन खड़ा कर दो, चाहे वह झूठा ही हो। फिर तुम उस कौम को मरने और मारने के लिए राजी कर सकते हो। फिर उससे तुम कोई भी बेवकूफियां करवाने के लिए उसे राजी कर सकते हो। फिर अपनी खुद की आत्महत्या करने को उस कौम के लिए राजी किया जा सकता है।

आदमी भयभीत हो जाए, फिर उसे किसी भी तरह राजी किया जा सकता है। ये दुनिया के जो भी शोषक हैं, इस बात को बहुत भलीभांति जान गए। लेकिन वृहत्तर मानव-समाज, हम सब अब तक भी ठीक-ठीक परिचित नहीं हो पाए हैं कि हमारा शोषण किन आधारों पर हो रहा है।

भय और प्रलोभन के आधार हैं-दान करो, यज्ञ करो, हवन करो, तो स्वर्ग में स्थान मिल जाएगा। मध्य-युग में तो ईसाई, पोप टिकट बेचते रहे हैं आदमी के स्वर्ग जाने के लिए। टिकट खरीद लो और स्वर्ग में स्थान सुरक्षित हो जाएगा।

कैसी-कैसी बेवकूफियां आदमी के साथ की जाती रही हैं जिनका कोई हिसाब है? लेकिन इस टिकट खरीदने की बात पर हम हंसेंगे। और हम एक ब्राह्मण को गाय दान कर दें, ताकि वैतरणी गाय पार करा देगी, तो हम न हंसेंगे। वह हमारी बेवकूफी है। अपनी बेवकूफी पर कोई भी नहीं हंसता। दूसरों की बेवकूफी पर कोई भी हंसने लगता है। लेकिन समझदार आदमी वह है जो अपनी बेवकूफियों पर हंसना शुरू कर देगा।

यज्ञ करो या हवन करो, या जाओ और भगवान की मूर्ति के सामने भगवान की स्तुति करो, स्तुति क्या है सिवाय खुशामद के? क्या है सिवाय परमात्मा की प्रशंसा के? और क्या यह भूल भरी बात नहीं है कि हम यह सोचते हों कि भगवान की प्रशंसा करके हम उसे प्रसन्न कर लेंगे? क्या हमने भगवान को भी एक कमजोर आदमी की शक्ल में नहीं सोच लिया है? किसी आदमी के पास जाते हैं और कहते हैं, आप बहुत महान हो और उसकी छाती फूल जाती है और सिर ऊंचा हो जाता है। शायद हम सोचते हैं, भगवान के सामने खड़े होते हैं कि तुम महान हो और पतित पावन हो, तो शायद वह भी गरूर से और अहंकार से भर जाता हो और खुश हो जाता हो। कैसे पागल हैं हम? या कि हम भगवान को जाकर कहें कि हम कुछ चढ़ा देंगे, कुछ त्याग कर देंगे, कैसी नासमझियां हैं? और इनके आधारों पर हम सोचते हैं कि हम धार्मिक हो जाएंगे? इस तरह हम धार्मिक नहीं हुए, लेकिन धर्म का शोषण करने वालों का एक व्यवसाय जरूर मोटा और तगड़ा हो गया। एक परंपरा जरूर खड़ी हो गई शोषकों की, जो हमारी कमजोरियों का शोषण कर रहे हैं और हमें समझा रहे हैं कि तुम ऐसा करो।

इस तरह के निवेदन, इस तरह की प्रार्थनाएं, इस तरह के यज्ञ, इस तरह के हवन, इस तरह की पूजा, इस तरह तुम करो, तो परमात्मा प्रसन्न होगा और तुम्हें सुख देगा, और तुमने यह नहीं किया तो परमात्मा नाराज होगा और दुख देगा। परमात्मा हमें सुख दे या न दे लेकिन इन पूजाओं और प्रार्थनाओं से जो पूजा और प्रार्थना कराते हैं उन्हें जरूर बहुत सुख मिल जाता है। और हम पूजा और प्रार्थना न करें तो हमें दुख मिलेगा या नहीं यह तो पता नहीं, लेकिन जो पूजाएं और प्रार्थनाएं करवाते हैं वे जरूर दुख में पड़ जाएंगे।

हमारे मन को लोभ दिए गए हैं और भय दिखाया गया है। बहुत प्रकार के लोभ, बहुत प्रकार के भय। क्या इन्हीं भय के कारण ही आप मंदिरों में नहीं जाते हैं? क्या इन्हीं लोभों के कारण आपने भगवान की स्तुति और प्रार्थनाएं नहीं की हैं? अगर की हों तो जानना कि वे प्रार्थनाएं झूठी थीं और वे मंदिर झूठे थे जिनमें आप गए। वह आपका जाना झूठा था।

लेकिन क्या कभी ऐसे मन को भी आपने अपने भीतर अनुभव किया है जो न लोभ से भरा हो और न भय से, लेकिन प्रेम से परिपूर्ण हो। अगर ऐसे मन को आपने जाना है तो वही मन असली प्रार्थना है, वही मन असली मंदिर है। जहां न लोभ है और न भय है, लेकिन प्रेम है। और प्रेम वहीं होता है जहां लोभ और भय नहीं होते।

क्या करें? कैसे भय से मुक्त हो जाएं?

कुछ लोगों ने भय से मुक्त होने की कोशिशें की हैं, तो वे इस तरह के भय से मुक्त हो गए हैं जो और घबड़ाने वाले और हंसाने वाले हैं। एक आदमी भय से मुक्त होना चाहता है, तो एक सांप पाल लेता है और गले में लटका लेता है और सोचता है कि अगर मैं सांप के साथ रहना सीख गया तो मैं भय से मुक्त हो गया। और ऐसे पागलों की कमी नहीं है जो उसके पैर छूने को भी मिल जाएंगे और कहेंगे यह अभय को उपलब्ध हो गया है। क्योंकि इसने एक सांप गले में लटका रखा है, इसको भय नहीं है।

या कि आदमी सोचता है कि मैं घर-द्वार छोड़ दूं, सड़क पर खड़ा हो जाऊं तो मैं अभय को उपलब्ध हो जाऊंगा। क्योंकि घर के साथ, परिवार के साथ बहुत से भय जुड़े थे। नुकसान हो सकता था, घाटा लग सकता था, पत्नी मर सकती थी, बच्चे बीमार पड़ सकते थे, और न मालूम क्या-क्या हो सकता था। वह सब मैं छोड़ कर सड़क पर आ गया। मैंने सारे भय छोड़ दिए, अब मैं निर्भय हो गया हूं। कोई सोचता हो कि निर्भयता ऐसे आती हो तो वह गलती में है।

एक फकीर की कहानी मैं सुनाऊं, उससे मेरी बात समझ में आ सके।

उस फकीर ने भी इसी भांति चाहा कि वह अभय को उपलब्ध हो जाए, फियरलेसनेस को पा ले। तो उसने जंगल में जाकर, घने जंगलों में, पहाड़ों में जहां कोई आदमी न पहुंचता था, जहां जंगली जानवरों का हमेशा प्राण को ले लेने का भय था, जहां भयंकर विषधर सर्प सरकते थे, वहां उसनें एक कुटी बना ली और रहने लगा। धीरे-धीरे उसकी खबर पहुंचनी शुरू हो गई। धीरे-धीरे गांव-गांव में उसकी चर्चा हो गई। धीरे-धीरे लोग उसके दर्शन को पहुंचने लगे और कहने लगे कि वही है अकेला जो अभय को उपलब्ध हुआ है। वह बूढ़ा हो गया था। कहते हैं उसके पीछे अगर आकर सिंह भी गर्जना करे तो वह लौट कर भी नहीं देखता कि पीछे कौन खड़ा है, वह बैठा रहता जैसा बैठा था। सांप उसके ऊपर चढ़ जाते तो उसको सिहरन भी पैदा नहीं होती थी, उसके रोंगटे भी खड़े नहीं होते थे।

एक नया भिक्षु, एक नया साधु उसके पास पहुंचा। एक संध्या जब कि सूरज ढलने को था, वह वृद्ध साधु बाहर अपनी कुटी के उस निबिड़ वन में एक चट्टान पर बैठा हुआ था नग्न। उसके पास ही वह नया भिक्षु भी जाकर एक छोटे पत्थर पर बैठ गया और उस बूढ़े साधु से उसने पूछा कि परमात्मा को पाने का रास्ता क्या है? उसका तो एक ही उत्तर था हमेशा से, अभय, भय से मुक्त हो जाओ। और जिस दिन भी तुम भय से मुक्त हो जाओगे, तुम्हारे चित्त में कोई भय नहीं होगा, उसी दिन परमात्मा अपने द्वार तुम्हारे लिए खोल देगा। यही उसने उससे भी कहा।

जब यह बात ही चलती थी कि तभी एक जंगली जानवर ने आकर पीछे जोर से चिंघाड़ा, आवाज की। वह नया भिक्षु खड़ा हो गया, उसके हाथ-पैर कंपने लगे। वह बूढ़ा भिक्षु हंसा और उसने कहा, अरे, तुम डरते हो! संन्यासी होकर डरते हो! और जहां डर है वहां धर्म नहीं हो सकता। वह युवक बोला, मैं तो डरता हूं। और घबड़ाहट में मुझे बहुत जोर से प्यास लग आई, क्या आप थोड़ा पानी मुझे दे सकेंगे, ताकि मैं इतनी ताकत जुटा सकूं कि मैं गांव तक वापस पहुंच जाऊं। अब मुझे कोई धर्म वगैरह नहीं सुनना है, मुझे वापस जाना है। वह बूढ़ा हंसा और उठ कर अपनी कुटी के भीतर गया। वहां से वह पानी लेकर वापस आया। लेकिन जब वह कुटी के भीतर था तो उस युवक साधु ने जिस चट्टान पर वह बूढ़ा बैठा हुआ था, उस पर एक पवित्र ग्रंथ की पंक्ति लिख दी। एक धार्मिक ग्रंथ की पंक्ति लिख दी जिसको वह बूढ़ा मानता था। एक पत्थर से उठा कर उसने पवित्र मंत्र लिख दिया। बूढ़ा आया, जैसे ही उसने पैर उठा कर चट्टान पर रखना चाहा देखा कि पवित्र मंत्र नीचे लिखा हुआ है, उसका पैर कंप गया और वह नीचे उतर गया।

उस युवक ने, युवक की बारी थी, वह हंसा और उसने कहाः डरते आप भी हैं। भयभीत आप भी हैं और जहां तक मेरे भय का संबंध है वह तो स्वाभाविक है और आपका भय बिल्कुल ही अस्वाभाविक है।

पवित्र मंत्र पर पैर न पड़ जाए इससे वह बूढ़ा भी डर गया। जो सिंह की गर्जना से नहीं डरता, जो सांपों के लपट जाने से नहीं डरता, जो निबिड़ अंधकार वन में अकेला रहता है और नहीं डरता, वह भी पवित्र मंत्र नीचे लिखा हुआ है उस पर पैर न पड़ जाए इसलिए डर गया।

उस युवक ने कहाः मैं तो परमात्मा को कभी जान भी लूं, लेकिन स्मरण रहे, आप कभी न जान पाएंगे।

मैं भी आपसे यही निवेदन करना चाहता हूं। भय से मुक्त होने का यह मतलब नहीं है कि बस आती हो तो आप सामने ही खड़े हो जाएं। यह मूढ़ता होगी, ईडियाटिक होगा, यह भय से मुक्त होना नहीं होगा। न ही भय से मुक्त होने का यह मतलब है कि जहां धूप हो वहां आप खड़े हो जाएं, न गड्ढों में कूद जाएं। भय से मुक्त होने का यह मतलब नहीं है।

भय से मुक्त होने का है जो साइकोलॉजिकल हैं, जो मानसिक भय हमने तैयार कर रखे हैं, उनसे मुक्त हो जाएं। यह तो जीवन की संवेदना है, बोध है, अगर सांप रास्ते पर है और आप रास्ते से हट जाते हैं तो यह भय नहीं है। यह तो सहज समझ है, यह तो होश है। यह तो स्वस्थ चित्त का लक्षण है। अगर कोई जहर खाने को आपको देता है और आप इनकार करते हैं, या जिस बोतल पर जहर लिखा हुआ है उसे आप नहीं पीते, तो यह तो एक स्वस्थ चित्त का लक्षण है। यह भय नहीं है, यह तो जीवन की सामान्य रक्षा है।

भय दूसरे तल पर हैं, गहरे तल पर हैं, मानसिक हैं। मानसिक तल पर जो भय हैं वे मनुष्य को धार्मिक नहीं होने देते। शरीर के तल पर जो भय हैं वे जीवन के लिए अपरिहार्य हैं, जरूरी हैं। वे तो जिस बच्चे में न हों उसके संबंध में हमें चिंतित हो जाना पड़ेगा। अगर एक बच्चा हो और आग में हाथ डाले और भयभीत न हो, वह बच्चा जिंदा नहीं रह सकेगा। उस बच्चे में बुद्धिमत्ता ही नहीं है।

एक बार ऐसा हुआ कि जापान में एक राजा को सनक आ गई, जैसा कि अक्सर होता है, राजाओं को सनकें आती हैं। सच तो यह है कि जो सनकी नहीं होते वे राजा ही नहीं होते। उस राजा को सनक आ गई। और उसने यह सारे राज्य में खबर करवा दी कि जो लोग भी मंदबुद्धि हैं, उनका कोई कसूर नहीं है मंदबुद्धि होने में, भगवान ने उनको मंदबुद्धि पैदा किया। तो मंदबुद्धि लोग कुछ काम नहीं करते हैं, आलसी हैं, बैठे रहते हैं, उनका कोई कसूर तो नहीं है मंदबुद्धि होने में। तो राज्य से व्यवस्था की जाएगी, जितने मंदबुद्धि हैं उनको राज्य की तरफ से आश्रय दिया जाएगा। वे राज्य के द्वारा बनाए गए आश्रमों में रहें, आनंद से खाएं और मौज करें। उनका कोई कसूर नहीं है कि वे मंदबुद्धि हैं। सारे राज्य में उसने खबर निकाल दी।

हजारों दरख्वास्तें आ गईं कि हम मंदबुद्धि हैं, हमको राज्य की सहायता मिलनी चाहिए। राजा बहुत परेशान हो गया। उसे कल्पना भी न थी कि उसके राज्य में इतने मंदबुद्धि हैं। रोज हजारों दरख्वास्तें आती ही

गईं। शायद ही कोई आदमी ऐसा हो जिसने दरख्वास्त न दी हो। कौन इतना नासमझ था? राज्य खाने, कपड़े और रहने की मुफ्त व्यवस्था कर रहा था। राजा घबड़ा गया, उसने सोचा था कि होंगे सौ-पचास, हजार, दो हजार आदमी। तो उसने अपने मंत्रियों को कहाः यह तो बड़ी मुश्किल हो गई। यह कैसे तय होगा कि कौन मंदबुद्धि है? उसके मंत्रियों ने कहा, हर चीज के रास्ते हैं, इंतजाम हो जाएगा। जिन लोगों ने दरख्वास्तें दी हैं उनको खबर कर दी जाए कि वे आ जाएं, उनकी परीक्षा होगी। अगर वे मंदबुद्धि सिद्ध हुए तो राज्य उन्हें शरण देगा। और नहीं सिद्ध हुए तो वापस लौटा दिए जाएंगे।

जिन लोगों ने सबसे पहले दरख्वास्त दी थी उनमें से एक हजार लोग बुलवा लिए गए। मंत्रियों ने बड़ी होशियारी का काम किया। उन्होंने घास-फूस के छोटे-छोटे झोपड़े बनाए एक हजार लोगों के रहने के लिए। और उन हजार लोगों को उनमें ठहरा दिया। और रात में उन झोपड़ों में आग लगा दी। जैसे ही आग लगी, लोग बाहर भागे। लेकिन चार आदमी ऐसे भी थे जो कंबल ओढ़ कर अंदर और ठीक से सो गए। जब आग लगी और उनके पड़ोसियों ने उनसे कहा, भागो, आग लगी है, तो उन्होंने कंबल ओढ़ लिया और सो गए। उन्होंने कहा कि अगर किसी की होगी इच्छा तो हमको निकाल बाहर कर दे। आग लगी है तो बाहर कौन जाए, सम्हल कर यहीं सो जाओ। वे चार आदमी चुन लिए गए, वे मंदबुद्धि थे। उनमें आग का भी भय नहीं था। वे और कंबल सौंड़ कर आराम से वहीं ओढ़ कर सो गए थे।

मंदबुद्धि होना और बात है, भयरहित होना और बात है। इसलिए जो मंदबुद्धि हैं, उनको अगर इस तरह के भय से मुक्त होना हो कि टेन के सामने खड़े हो जाएं, या बस के सामने, या सांप को गले में लटका लें, तो मंदबुद्धियों के लिए यह बहुत आसान है, इसमें कोई कठिनाई नहीं है।

लेकिन अभय का अर्थ मंदबुद्धि नहीं है। अभय का अर्थ संवेदनशून्यता नहीं है। अभय का दूसरा अर्थ है। अभय का अर्थ है, मानसिक तल पर हमने जो भय पाल रखे हैं, उनसे मुक्त हो जाना। हमने कौन से भय पाल रखे हैं? हमने बहुत से भय पाल रखे हैं। मानसिक तल पर हम इतने ज्यादा भयभीत हैं जिसका कोई हिसाब नहीं। आप जब मंदिर में जाकर प्रणाम करते हो तो किस कारण से करते हो? कोई भय काम कर रहा है।

मेरे एक मित्र हैं, वे नियमित जिस मंदिर के सामने से भी निकलें, हाथ जोड़े बिना नहीं रह जाते थे। मेरे साथ एक दिन एक सड़क पर से निकले, कोई तीन मंदिर आए। उन्होंने हर मंदिर के सामने हाथ जोड़े, मेरी वजह से थोड़ा संकोच किया लेकिन फिर भी जैसे ही मेरी आंख बची उन्होंने जल्दी से हाथ जोड़ लिए। मैंने उनसे बात की कि यह क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहाः मुझे ऐसा भय लगता है कि अगर मैंने हाथ न जोड़े तो भगवान नाराज हो जाए। और एक दिन आपकी बात मान कर मैं एक मंदिर के सामने से बिना हाथ जोड़े निकल गया। मैंने बड़ी हिम्मत की, मेरे माथे पर पसीना आ गया। मैंने बड़ी हिम्मत की और मैंने कहा कि आज मैं देखूं तो निकल कर क्या होता है? लेकिन मैं दस कदम से आगे नहीं जा सका, दस कदम पर जाकर मुझे ऐसी घबड़ाहट होने लगी कि मुझे लगा कि पता नहीं क्या हो जाए? मैं वापस लौटा, मैंने ठीक से हाथ जोड़े और क्षमा मांगी कि ऐसी भूल अब कभी न करूंगा।

ये मानसिक भय हैं, ये साइकोलाजिकल फियर्स हैं। ये सीखे हुए हैं, ये बिल्कुल झूठे हैं, ये सिखाए गए हैं। और ऐसे भयभीत चित्त को ही हम धार्मिक कहते रहे हैं। यह तो बिल्कुल धार्मिक नहीं है, यह तो जरा भी धार्मिक नहीं है। ऐसे भय को चित्त में खोजना जरूरी है।

हमारी मान्यताएं, हमारे विश्वास, हमारी बिलीफस, सब भय पर खड़ी हुई हैं। हमारे सिद्धांत, हमारा तथाकथित ज्ञान, हमारा पंथ, हमारा संप्रदाय, हमारी पूजा, हमारी प्रार्थना, इसी तरह के भय पर खड़ी हुई हैं। ये भय चित्त को रुग्ण करते हैं, ये भय चित्त को कमजोर करते हैं, ये भय चित्त को शक्तिहीन करते हैं और इन भय से घिरा हुआ व्यक्ति धीरे-धीरे विक्षिप्त हो सकता है, मुक्त नहीं हो सकता।

यह जाल भय का तोड़ना जरूरी है, लेकिन हमको भय लगेगा कि अगर हमने यह जाल तोड़ा तो फिर हम धार्मिक न रह जाएंगे, फिर तो हम अधार्मिक हो जाएंगे। यह भी हमें सिखाया गया है कि इन भय से जो भयभीत होता है, वही आदमी रिलीजस, वही आदमी धार्मिक है, वही अच्छा आदमी है। जो इनको तोड़ देता है, वह आदमी बुरा हो जाता है। यह बात गलत है।

असल में जो इनको तोड़ता है, इन भय के जाल को जो तोड़ देता है, वही इन जाल के भीतर छिपी हुई आत्मा को जानने में समर्थ हो पाता है। क्योंकि भय को तोड़ते ही एक इतनी बड़ी शक्ति उसके भीतर जन्मती है, एक इतना बड़ा साहस उसके भीतर पैदा होता है, एक इतना बल उसके भीतर मुक्त होता है। यह भय के जाल के भीतर बड़ी शक्ति दबी बैठी है, जो उठ नहीं पाती, जो खड़ी नहीं हो पाती। विवेक जाग्रत नहीं हो पाता, विचार मुक्त नहीं हो पाता है। इन भय से ही हम बंधे रह जाते हैं, अटके रह जाते हैं। ये भय हमें हिलने भी नहीं देते। इन भय की दीवाल में हम आंख भी नहीं उठा सकते ऊपर। कहीं देख भी नहीं सकते। हर चीज में भय लगता है कि कहीं यह न हो जाए। ये जो भय हैं कैसे-कैसे हैं?

मैंने सुना है, हिंदुओं के ग्रंथों में लिखा हुआ है और वैसा ही जैनों के ग्रंथों में भी लिखा हुआ है। मैंने सुना है कि हिंदुओं के ग्रंथों में लिखा है कि अगर पागल हाथी तुम्हारे पीछे दौड़ता हो और जैन मंदिर आ जाए तो तुम पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना लेकिन जैन मंदिर में मत जाना। और यही बात जैन ग्रंथों में भी लिखी हुई है कि अगर हिंदू मंदिर आ जाए और पागल हाथी पीछे आता हो तो तुम उसके पैर के नीचे दब कर मर जाना वह बेहतर है लेकिन हिंदू मंदिर में प्रवेश मत करना, वह बड़ा पापपूर्ण है। ऐसे-ऐसे भय हैं।

एक जैन साधु मेरे पास ठहरे। उन्होंने सुबह उठ कर ही मुझसे कहाः जैन मंदिर कहां है, मैं वहां जाना चाहता हूं। मैंने उनसे कहाः वहां जाकर क्या करिएगा? उन्होंने कहाः मैं वहां एकांत में आत्म-चिंतन करूंगा, ध्यान करूंगा, सामायिक करूंगा। मैंने उनसे कहाः मेरे पास जहां आप ठहरे हैं, जितनी शांति और एकांत है, उतनी शांति और एकांत में यहां का मंदिर नहीं है। क्योंकि मंदिर जो भीड़ बनाती है वह अपने आस-पास ही बनाती है। तो जहां यहां भीड़ रहती है, वहीं वह मंदिर है। वहां बहुत शोरगुल है, वहां क्या करिएगा? यहां बहुत एकांत है। वे बोले कि नहीं, फिर भी यह रहने का मकान है, इसमें लोग रहते हैं। मंदिर में कोई रहता नहीं, इसलिए उसकी पवित्रता दूसरी है। मैं वहीं जाऊं। तो मैंने उनसे कहा, हमारे पड़ोस में ही एक चर्च है, वहां भी कोई नहीं रहता, आप उस चर्च में चले चलिए। उन्होंने कहा, चर्च! आप कैसी बातें करते हैं? मैं जो आपसे पूछ रहा हूं उसका उत्तर दीजिए कि जैन मंदिर कहां है? आप दूसरी बातें मत करिए।

मैंने कहाः उस चर्च में कोई भी नहीं रहता। और आज चूंकि इतवार नहीं है, रविवार नहीं है इसलिए वहां कोई भी नहीं होगा, आज पादरी भी सिनेमा देखने गया होगा। रविवार को वहां लोग होते हैं तब पादरी भी वहां रहता है। क्योंकि मैं कई दफा जब रविवार नहीं होता वहां जाता हूं, मुझे पादरी भी नहीं मिलता। तो वहां कोई भी नहीं होगा, एकदम एकांत, बड़ी शांति में वह जगह है, चले चलिए।

लेकिन चर्च शब्द भय पैदा करता है। जैन शब्द प्रलोभन पैदा करता है, वह अपना मंदिर है, अपने भगवान का। यह दूसरों का मंदिर है, ऐसे भगवानों का जिनका होना भी तय नहीं। यहां जाने में कोई अर्थ नहीं है, कोई लाभ नहीं है। वही ईसाई से कहिए, तो जैन मंदिर का सवाल हो जाएगा। वही हिंदू से कहिए, मुसलमान से कहिए।

ये सारे भय हैं हमारे भीतर। ये जो मानसिक तल पर भय हैं, ये जो साइकोलाजिकल फियर्स हैं, क्या इनके रहते हुए कोई आदमी धार्मिक हो सकता है? नहीं हो सकता। यह जाल टूट जाना चाहिए। और यह जाल टूटना बहुत कठिन नहीं है। यह असंभव तो है ही नहीं, कठिन भी नहीं है, बहुत सरल है।

असल में यह जाल कोई ऐसा जाल नहीं है जिसकी वास्तविक जंजीरें हों, केवल शब्दों की जंजीरें हैं। और शब्दों की जंजीरें कागजों से भी कमजोर हैं। इनको कोई देख ले तो इनसे मुक्त हो जाता है। इनको कोई समझ ले तो इनसे मुक्त हो जाता है। इनकी अंडरस्टैंडिंग ही इनसे छुटकारा बन जाती है, इनको तोड़ना नहीं पड़ता।

एक दफा अपने मन में यह देख लें कि मेरे चित्त में कौन-कौन से मानसिक भय बैठे हुए हैं? उनको देख लेना, उनको पहचान लेना, उनको जान लेना ही उनसे छुटकारा है। उनको जानने के बाद उनका कोई बंधन नहीं रह जाएगा, क्योंकि आप खुद उन पर हंसने लगेंगे कि यह क्या पागलपन है? यह क्या नासमझी है? यह मैं क्या कर रहा हूं? यह सब मैंने कौन सा जाल मन के ऊपर रच रखा है? अगर आप एक बार अपने मन के इस जाल को देख लेंगे, तो दिखाई पड़ेगा, एकदम काल्पनिक है यह जाल। इसमें आप बंधे हैं केवल इसलिए कि इस जाल को आपने सत्य समझ रखा है। और अगर आपको यह दिखाई पड़ जाए यह असत्य है तो आप छूट गए। सत्य समझा है इसलिए बंधे हैं। समझ बांध रही है। और कोई जाल नहीं है जो बांध रहा हो।

एक छोटी सी कहानी कहूं। उससे शायद मेरी बात खयाल में आ सके।

एक रात अंधेरी रात में एक बड़ा काफिला एक रेगिस्तानी सराय में आकर ठहरा। कोई सौ ऊंट थे उस काफिले के पास। आधी रात हो गई थी। शायद वे रास्ता भटक गए थे, और सांझ को पहुंचने वाले थे लेकिन रात को पहुंचे। सभी थके हुए थे। उन्होंने जल्दी-जल्दी खूंटियां गाड़ीं, रस्सियां बांधीं और अपने ऊंटों को बांधा, लेकिन शायद इस जल्दबाजी में एक खूंटी और एक रस्सी खो गई, या कहीं रास्ते में गिर गई। निन्यानबे ऊंट तो बांध दिए गए लेकिन एक ऊंट बिना बंधा रह गया। आधी रात हो गई थी, वे सो जाना चाहते थे और ऊंट को बिना बंधा छोड़ना ठीक नहीं था। रात अंधेरी थी और वह भटक सकता था। तो उन्होंने सराय के मालिक को जाकर कहा कि अगर एक खूंटी और एक रस्सी हमें मिल जाए तो बड़ी कृपा हो। एक ऊंट हमारा बिना बंधा रह गया है। हमारी खूंटी कहीं खो गई या गिर गई। रस्सी भी हमारे पास नहीं है। निन्यानबे ऊंट बांध दिए गए हैं, एक बिन बंधा है।

उस सराय के मालिक ने कहाः मैं तो बहुत गरीब हूं, और यहां कोई खूंटी और कोई रस्सी नहीं हैं। लेकिन हां, एक तरकीब बताता हूं, बांध दो, जाओ खूंटी गाड़ दो, रस्सी बांध दो और ऊंट से कहो, सो जाओ। उन लोगों ने कहाः आप बड़े पागल मालूम पड़ते हैं। रस्सी और खूंटी होती तो हम आपके पास आते क्यों? रस्सी बांध दें और खूंटी गाड़ दें! आपने बड़ी अच्छी बात बताई, लेकिन हमारे पास है नहीं। उसने कहा कि जो नहीं है उसी को गड़ा दो और जो नहीं है उसी को बांध दो। झूठी खूंटी ठोंक दो जमीन में, अंधेरे में ऊंट को समझ में पड़ जाए कि खूंटी ठोंकी गई। और झूठी रस्सी उसके गले में हाथ फेर दो और बांध दो और कह दो, बैठ जाओ। लेकिन उन लोगों ने कहा, विश्वास नहीं पड़ता।

वह बूढ़ा हंसा कि तुम विश्वास नहीं करते ऊंट के बाबत, मैं आदमियों को ऐसी खूंटियों से बंधे देखता हूं जो नहीं है। तुम जाओ, कोशिश करो। ऊंट तो ऊंट है आदमी राजी हो जाता है। वह गया, मजबूरी थी, जाना पड़ा ऊंट के पास। उनके पास नहीं थी खूंटियां। अब बूढ़े ने कहा था तो देख लें यह भी करके। उन्होंने खूंटी ठोकी, जैसे कि असली खूंटी ठोकी जाती है। आवाज की, गड्ढा किया, ऊंट खड़ा अंधेरे में देखता रहा, खूंटी ठोकी जा रही थी। फिर उन्होंने ऊंट के गले में हाथ डाला और जैसे रस्सी बांधी जाती थी वैसी कोशिश की। ऊंट ने समझा होगा रस्सी बांध दी गई है और फिर उन्होंने कहाः बैठ जाओ और ऊंट बैठ गया। और वे जाकर सो गए। और सुबह वे उठे और काफिला नई यात्रा पर जाने को हुआ। तो उन्होंने निन्यानबे ऊंटों की खूंटियां निकाल दीं, रस्सियां खोल लीं और उनको मुक्त कर दिया। लेकिन सौवें ऊंट की न तो कोई खूंटी थी न रस्सी, उसको क्या खोलना? उन्होंने निन्यानबे ऊंट तो खोल दिए, वे ऊंट चलने को राजी हो गए, लेकिन सौवां ऊंट बैठा रहा। उन्होंने उसे बहुत धक्के दिए, बहुत आवाज की कि उठो लेकिन वह उठने को राजी नहीं हुआ। कैसे उठता? उसकी खूंटी बंधी थी।

वे बड़े हैरान हुए। समझे कि यह बूढ़ा सराय का जो मालिक है, क्या कोई जादूगर है? एक तो यही विश्वास की बात नहीं थी कि झूठी खूंटी से ऊंट राजी हो जाएगा। राजी हो गया और हद्द हो गई अब वह उठता भी नहीं है। वे वापस गए और उन्होंने उस बूढ़े से कहा कि माफ करिए, अब उस ऊंट को उठाइएगा। वह तो बैठे ही रह गया। आपने क्या कर दिया? उसने कहाः तो मेरे पागल दोस्तो, पहले जाकर खूंटी उखाड़ो, रस्सी खोलो। उन्होंने कहाः लेकिन खूंटी है नहीं, रस्सी है नहीं। उसने कहा, जिस भांति रात ठोकी थी उसी भांति उखाड़ो। जो नहीं थी अगर वह ठोंकी जा सकती है तो जो नहीं है वह निकालनी भी पड़ेगी, जाओ। मजबूरी थी, उन्हें जाना पड़ा। वे गए, उन्होंने जाकर खूंटी निकाली, रस्सी खोली, ऊंट उठ कर खड़ा हो गया। वह यात्रा पर राजी हो गया।

उस बूढ़े आदमी ने ठीक कहा था, ऊंट तो ऊंट आदमी भी राजी हो जाते हैं। हम सब राजी हो गए हैं। और ऐसी खूंटियां हमारे मन पर हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं। ऐसी रस्सियां हमारे मन पर हैं जिनकी कोई सत्ता नहीं, जिनका कोई एक्झिस्टेंस नहीं।

लेकिन आप पूछेंगे, उखाड़ें कैसे इनको? इनको निकालें कैसे?

जरूर जिस भांति इनको गड़ाया है उसी भांति इनको निकालना भी पड़ेगा। जिस भांति इनको ठोका है उसी भांति तोड़ना भी पड़ेगा। कैसे ठोका है इन खूंटियों को? कौन सी सीक्रेट है इनके ठोकने की? कौन सा टेक्नीक? कौन सी तरकीब है? तरकीब यह है कि हमने इन भयों को सत्य मान लिया इसलिए ये हमारे ऊपर ठुक गए। इनको सत्य मान लेना इनका सीक्रेट है। जिस चीज को हम सच मान लेंगे उससे हम बंध जाएंगे। जिस चीज को हम असत्य जान लेंगे उससे हम मुक्त हो जाएंगे। सत्य मान लेना, मान लेना हमारा कारण है इनसे बंधे होने का। विश्वास कारण है हमारा इनसे बंधे होने का।

तो थोड़ा आंख खोल कर देखें कि इन्हें मानने की कोई वजह है? क्या कोई वजह है उस मूर्ति को भगवान मानने की जिसको हम भगवान मानते रहे? कोई भी तो वजह नहीं है सिवाय इसके कि और लोग मानते हैं। कोई भी तो वजह नहीं है सिवाय इसके कि और लोग मानते हैं। और मैं भी उन लोगों में पैदा हुआ हूं जो मानते हैं और बचपन से उन्होंने मुझे सिखा दिया है कि मानो।

उन्नीस सौ सत्रह में रूस में सारे लोग आस्तिक थे। उन्नीस सौ सत्रह में क्रांति हो गई। वहां जो लोग हुकूमत में आए वे नास्तिक थे। उन्होंने शिक्षा देनी शुरू की-न कोई ईश्वर है, न कोई आत्मा है, न कोई धर्म है, न कोई स्वर्ग, न कोई नरक, न कोई मोक्ष, न कोई पाप, न कोई पुण्य, कुछ भी नहीं है। निरंतर पंद्रह-बीस साल की शिक्षा के बाद आज रूस के बच्चे से जाकर पूछिए, ईश्वर है?

मेरे एक मित्र रूस में थे, उन्होंने पूछा एक छोटे से स्कूल में बच्चों से, ईश्वर है? वे हंसने लगे और उन्होंने कहा, था, है नहीं। पहले था, उन्नीस सौ सत्रह के पहले था। क्रांति के पहले था। जमाना हुआ खतम हो गया, अब नहीं है। और जहां अज्ञान है, जहां अभी क्रांति नहीं हुई वहां अभी भी है, बहुत जल्दी वहां भी नहीं रह जाएगा।

जो उनको सिखाया वे उसे दोहरा रहे हैं। उन्होंने पुरानी खूंटियां तोड़ दीं, नई खूंटियां गाड़ लीं। कल तक वे बाइबिल को मानते थे, अब वे दास कैपिटल को मानते हैं। कल तक क्राइस्ट का जयजयगान करते थे, अब वे मार्क्स और लेनिन का जयजयगान करते हैं। कल तक वे क्राइस्ट के चर्च के आस-पास इकट्ठे होते थे, अब वे लेनिन की कब्र के आस-पास इकट्ठे होते हैं। बात वही है, खूंटियां बदल गईं हैं, अब वे दूसरी खूंटियां गड़ गई हैं, अब वे उनका जयजयकार कर रहे हैं। और सोचते होंगे की ये खूंटियां सच हैं। सच हैं इसलिए बांध लेती हैं। हम दूसरी तरह की खूंटियों में बंधे हैं।

दुनिया में कई तरह की खूंटियां हैं-लाल रंग की, हरे रंग की, सफेद रंग की; हिंदू की, मुसलमान की, जैन की, ईसाई की, न मालूम कितने प्रकार की खूंटियां हैं। रंग-बिरंगी खूंटियां हैं। और सौभाग्य या दुर्भाग्य से जो जिस खूंटे के घेरे में पैदा हो जाता है उसी से बंध जाता है। और बंधने का कुल कारण इतना है कि बचपन से

सीख लेता है कि यह सच है। सत्य का कोई पता नहीं और हम मान लेते हैं कि यह सत्य है तो बंधन खड़ा हो जाता है। फिर कैसे इस खूंटी को उखाड़ दें?

एक रास्ता तो यह है जो अब तक जारी रहा है, वह यह है कि मैं आपके पास दूसरी खूंटी लेकर आऊं और कहूं कि महाशय यह लाल खूंटी बिल्कुल खराब है, यह हरी खूंटी बहुत अच्छी है, इसको फेंकिए यह खूंटी बिल्कुल रद्दी है, सड़ चुकी, यह अब काम करने वाली नहीं है, यह खूंटी नई और ताजी और अच्छी है। एक रास्ता तो यह रहा है कि मैं दूसरी खूंटी लेकर आपके पास आऊं। अगर आप मुसलमान हैं तो मैं हिंदू की खूंटी लेकर आऊं। अगर आप हिंदू हैं तो मैं ईसाई की खूंटी लेकर आऊं। अगर आप जैन हैं तो मैं बौद्ध की खूंटी लेकर आऊं और आपकी खूंटी बदलवा दूं, दूसरा सब्स्टीट्यूट आपको दे दूं। यह आज तक हुआ है। खूंटी से आदमी मुक्त नहीं हुआ है, एक खूंटी से होता है तो दूसरी खूंटी से बंध जाता है। लेकिन ऐसा नहीं होता कि वह किसी खूंटी से बंधा हुआ न रह जाए।

मैं कोई दूसरी खूंटी लेकर आपके पास नहीं आया हूं। मैं आपसे यह नहीं कहता कि वह खूंटी बुरी है जिससे आप बंधे हैं, मैं एक खूंटी आपको देता हूं इससे आप बंध जाएं। मैं आपसे यह कहने आया हूं, खूंटी से बंधा होना बुरा है। कोई खूंटी-वूंटी का बुरा सवाल नहीं है, खूंटी से बंधा होना बुरा है। चाहे वह कोई भी खूंटी हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता-हिंदू की हो, मुसलमान की, जैन की, ईसाई की, कम्युनिस्ट की, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। चित्त बंधा हुआ हो यह बुरी बात है। क्योंकि बंधा हुआ चित्त और असत्य से बंधा हुआ चित्त-नहीं जानता ऐसी चीजों से बंधा हुआ चित्त-वहां तक नहीं पहुंच सकता जहां ज्ञान है, जहां सत्य है, जहां परमात्मा है, जहां जीवन का मूल उत्स है वहां नहीं पहुंच सकता।

तो दिखाई तो पड़ेगा कि हम परमात्मा की पूजा कर रहे हैं लेकिन हम किसी रंग की खूंटी की पूजा करते रहेंगे। और दिखाई तो पड़ेगा हम मंदिरों में जा रहे हैं, हम मंदिरों में कभी नहीं गए क्योंकि मंदिरों में जाने वाला मन ही हमारे पास नहीं है जो मुक्त हो, खुला हो, उन्मुक्त हो।

पहली बात है, स्वतंत्र चित्त चाहिए सत्य को जानने को। स्वतंत्रता सीढ़ी है सत्य की। स्वतंत्र जिसका चित्त नहीं, सत्य, सत्य उसके लिए नहीं हो सकता। फ्रीडम चाहिए।

किससे फ्रीडम? किससे स्वतंत्रता? उन खूंटियों से जो हैं ही नहीं। उन रस्सियों से जो झूठी हैं, जिनकी कोई सत्ता नहीं, कोई अस्तित्व नहीं। मन के भय, मन के विश्वास, मन के सिद्धांत हमें बांधते हैं, क्योंकि हम मानते हैं कि वे सत्य हैं। खोजें और देखें तो दिखाई पड़ जाएगा कि हमने कभी उन्हें माना था, हमने उन्हें जाना नहीं है। जिसे हमने माना था, वह अज्ञान है। जिसे हमने नहीं जाना, उसे मानने का कोई भी कारण नहीं है। खाली हो जाएंगे तब मान्यताओं से आप, टूट जाएंगे जाल, भय से मन मुक्त हो जाएगा और तब वह ऊर्जा पैदा होगी, वह शक्ति, वह बल, वह साहस, वह आत्म-चेतना जन्मेगी। इन भय के जाल से टूट जाते ही जो सेतु बन जाती है, ब्रिज बन जाती है परमात्मा तक पहुंचने का।

सुबह मैंने एक सूत्र की बात की थीः विवेक के जागरण की और विश्वास से मुक्त होने की। संध्या मैंने दूसरे सूत्र की आपसे बात की हैः भय से मुक्त होने की और अभय में प्रतिष्ठित होने की। शेष कुछ सूत्रों की बात आने वाली चर्चाओं में मैं आपसे करूंगा।

अंत में इतना ही कहूंगा, मेरी बातों पर विश्वास न ले आएं कि मैं जो कह रहा हूं वह ठीक है। हो सकता है, जो मैं कह रहा हूं वह बिल्कुल गलत है। हो सकता है मैं किसी तरकीब से कोई नई खूंटी गाड़ने की कोशिश कर रहा हूं और आप उसमें पकड़ जाएं, आप उसमें जकड़ जाएं। इसलिए मुझसे सावधान रहने की जरूरत है। मैं जो बात कह रहा हूं उसमें सबसे ज्यादा जरूरी है कि मुझसे सावधान रहें। कोई मेरी खूंटी आपके मन में न गड़ जाए। सोचें, विचारें मैंने जो कहा है। रात सोते वक्त थोड़ा उस पर खयाल करें कि मैंने क्या कहा है। और अपने भीतर खोजें कि कहीं सच में वैसे भय आपके भीतर तो नहीं हैं जो झूठे हैं, जिनको आप नहीं जानते, जिनसे आप

भयभीत हैं, परेशान हैं और जो आपके जीवनचर्या को प्रभावित कर रहे हैं? अगर ऐसे भय आपको दिखाई पड़ जाएंगे, तो आपको कुछ और नहीं करना होगा, उनका दर्शन ही उनकी मृत्यु हो जाएगी। आपने उनको देखा कि वे गए। जैसे कोई आदमी एक दीये को जला कर किसी अंधेरे कमरे में जाए अंधेरे को खोजने तो दीये को जला कर ले जाएगा तो अंधेरा उसे मिलेगा? वह नहीं मिलेगा। क्योंकि दीये की मौजूदगी अंधेरे का अंत है।

ऐसे ही जो भी भय हमारे चित्त में हैं वे अंधेरे के निवासी हैं। जब आप बोधपूर्वक उनकी खोज में दीया जला कर जाएंगे खोजने कि वे कहां हैं, तो आपको हंसी आएगी, वे अंधेरे के वासी आपको नहीं मिलेंगे।

एक बार ऐसा हुआ, अंधेरे ने जाकर भगवान के पास... और उससे कहा कि तुम क्यों अंधेरे के पीछे पड़े हुए हो? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? सूरज ने कहा, कैसा अंधेरा? कौन अंधेरा? मैं तो जानता भी नहीं। मेरा आज तक उससे मिलना नहीं हुआ। आप उसे मेरे सामने बुला दें और वह मेरे सामने शिकायत कर दे तो मैं माफी मांग लूं और आगे के लिए पहचान लूं कि यह कौन है, तो उसका पीछा न करूं। तब से भगवान भी हार गए हैं, अंधेरे के लिए कोशिश करते हैं सूरज के सामने लाने की, अभी तक ला नहीं पाए। वे कभी नहीं ला पाएंगे। क्योंकि सूरज की मौजूदगी अंधेरे का अंत है। वह सामने खड़ा नहीं हो सकता।

जब हम बोधपूर्वक भीतर चित्त में खोजने जाएंगे कौन-कौन से भय हमें पकड़े हुए हैं? जब आप दीया जला कर विचार का खोजने जाएंगे आप हैरान हो जाएंगे, वे भय गए।

वे खूंटियां वैसी थीं जो किन्हीं समझदार व्यापारियों ने आपके लिए बांध दी थीं और आपको उसके साथ बांध दिया था। समझदार व्यापारियों का डर था कि कहीं आप उनके घेरे से भटक न जाओ। वे जो समझदार व्यापारी थे ऊंट के मालिक, उनको भय था कहीं ऊंट भटक न जाए, कहीं दूसरे जत्थे में शामिल न हो जाए, कहीं कोई इसे ले न जाए।

मनुष्य के जीवन में भी कुछ समझदार व्यापारी पैदा हो गए और उन्होंने आदमी के चित्त पर खूंटियां बांध दीं ताकि कोई आदमी उनके घेरे, उनके फोल्ड के बाहर न चला जाए। हिंदू के बाहर न चला जाए, मुसलमान के बाहर न चला जाए। झूठी खूंटियां गड़ा दीं, झूठे जाल बुन दिए भय के और उनमें आदमी बंद है।

जो आदमी उनमें बंद है, वह आत्मघाती है, वह अपना दुश्मन है, वह अपनी आत्मा को अपने हाथ से खो रहा है। जो उनसे मुक्त होता है उसी को आत्मा की गरिमा और गौरव उपलब्ध होता है। वही ठीक अर्थों में मनुष्य बनता है।

वह कैसे मनुष्य बन सकता है, उसकी कुछ और चर्चा आने वाले दो दिनों में मैं आपसे करूंगा।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

तीसरा प्रवचन

विश्वास, श्रद्धा और विचार

मेरे प्रिय आत्मन्!

बहुत से प्रश्न मेरे पास आए हैं। अनेक प्रश्न एक जैसे हैं, इसलिए कुछ थोड़े से प्रश्नों में सभी प्रश्नों को बांट कर आपसे चर्चा करूंगा तो आसानी होगी।

मैंने कल कहाः विश्वास धर्म नहीं है, वरन विचार और विवेक धर्म है। श्रद्धा अंधी है। और जो अंधा है वह सत्य को नहीं जान सकेगा।

इस संबंध में बहुत से प्रश्न पूछे गए हैं और उनमें पूछा गया है कि यदि हम श्रद्धा न रखेंगे, यदि हम विश्वास न रखेंगे, तब तो हमारा मार्ग भटक जाएगा।

यह वैसा ही है जैसे एक अंधे आदमी को हम कहें कि तुम अपने हाथ में जो लकड़ी लिए घूमता है, अपनी आंखों का इलाज करवा ले और इस लकड़ी को फेंक दे, तो वह अंधा आदमी कहे, माना मैंने कि आंखों का इलाज तो मुझे करवा लेना है लेकिन लकड़ी को अगर मैं फेंक दूंगा तो भटक जाऊंगा। बिना लकड़ी के तो मैं चल ही नहीं पाता हूं। निश्चित ही अंधा आदमी बिना लकड़ी के नहीं चल पाता है लेकिन आंख वाले आदमी को लकड़ी की कोई भी जरूरत नहीं है। और जो अंधा आदमी यह आग्रह करेगा कि मैं तो लकड़ी के बिना चलूंगा ही नहीं, वह इस बात को भूल ही जाएगा कि आंख की जगह लकड़ी कोई सब्स्टीट्यूट नहीं है, कोई परिपूर्ति नहीं है। लेकिन यह सीधी सी बात भी हमें दिखाई नहीं पड़ती है।

एक छोटी सी कहानी कहूं, उससे शायद मेरी बात समझ में आए।

एक बूढ़ा आदमी था, उसकी उम्र कोई सत्तर पार कर गई थी तब उसकी दोनों आंखें चली गईं। उसके आठ लड़के थे, पत्नी थी, आठ लड़कों की बहुएं थीं। उन सबने उसे समझाया, चिकित्सक कहते थे कि आंखें ठीक हो सकती हैं, लेकिन उस बूढ़े आदमी ने कहा, मुझे आंखों की जरूरत क्या है? आठ मेरे लड़के हैं, उनकी सोलह आंखें; आठ मेरी बहुएं हैं, उनकी सोलह आंखें; मेरी पत्नी है, उसकी दो आंखें, ऐसे मेरे घर में चौंतीस आंखें हैं। तो जिसके घर में चौंतीस आंखें हों उसके पास अगर दो आंखें न भी हुईं तो फर्क क्या पड़ता है? ये चौंतीस आंखें क्या मेरा काम न कर सकेंगी? और अब मैं बूढ़ा हुआ, अब मुझे आंखों की जरूरत भी क्या है?

वह अपनी बात पर अड़ा रहा। आखिर समझाने वाले हार गए और बात बंद हो गई। लेकिन इसके कोई दो महीने बाद ही उस बूढ़े आदमी के भवन में आग लग गई और तब वे चौंतीस आंखें बाहर निकल गईं। जब आग लगी तो उनमें से किसी को भी यह खयाल न आया कि एक बूढ़ा आदमी भी घर में है जिसके पास आंखें नहीं हैं। जब आग लगी तो अपने प्राण बचाने जरूरी हो गए। और अपनी आंखें अपने प्राण बचाने के काम में आ गईं। जब वे सब बाहर पहुंच गए सुरक्षित तब उन्हें खयाल आया कि घर में बूढ़ा आदमी भी है जो भीतर रह गया, लेकिन तब तक देर हो गई थी, लपटों ने मकान घेर लिया था, धू-धू करके मकान जल रहा था, अब भीतर जाना कठिन था। वहां भीतर वह बूढ़ा आदमी जब जलने लगा, तब उसे भी यह खयाल आया, लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। कि जब मकान में आग लगी हो तो अपनी आंखों के अतिरिक्त और किसी की आंखें काम नहीं आ सकतीं। लेकिन तब बहुत देर हो गई थी। तब मकान जल रहा था और उस बूढ़े आदमी को उसी मकान में जल जाना पड़ा।

जीवन के मकान में तो रोज ही आग लगी है। जीवन का मकान तो प्रतिक्षण, प्रतिपल जल रहा है, उसमें किसी दूसरे की आंख काम नहीं आ सकती। अपनी आंख ही काम आ सकती हैं इस जीवन के जलते हुए मकान से बाहर ले जाने के लिए। लेकिन फिर भी वह बूढ़ा आदमी तो जिन चौंतीस आंखों पर विश्वास किया था वे उसके

सामने थीं, मौजूद थीं। हम तो उन आंखों पर विश्वास किए हैं, कोई आंखें दो हजार साल पहले समाप्त हो गईं, कोई ढाई हजार साल पहले, कोई पांच हजार साल पहले। कोई राम की आंखों पर विश्वास किए हुए है, कोई कृष्ण की आंखों पर, कोई महावीर की, कोई बुद्ध की, कोई क्राइस्ट की, कोई मोहम्मद की, वे कोई भी आंखें मौजूद नहीं हैं। उन आंखों ने जरूर उन लोगों को बचा लिया होगा जिनकी वे आंखें थीं। लेकिन इस भूल में कोई न पड़े की वे आंखें मेरे काम आ सकती हैं। मेरे काम मेरी आंखें आ सकती हैं। मेरी जिंदगी है, मेरी मौत है, मेरा दुख है, मेरा अज्ञान है, मेरा ही प्रकाश भी चाहिए जो उसे मिटा दे।

आपके लिए कोई मर सकता है? आपकी जगह कोई मर सकता है? और कोई दूसरा मर भी जाए तो मृत्यु का आपको अनुभव हो सकता है? आपकी जगह कोई प्रेम कर सकता है? आप किसी को अपनी जगह प्रेम करने दें और आपको प्रेम का अनुभव हो जाए? हम जानते हैं यह नहीं हो सकता। लेकिन जहां तक परमात्मा का संबंध है हम इस खयाल में होते हैं कि दूसरे की आंखों से उसे देखा जा सकता है। प्रेम भी दूसरे की आंखों से नहीं किया जा सकता, तो परमात्मा कैसे दूसरे की आंखों से देखा जा सकेगा?

अपनी आंख चाहिए। लेकिन सच्चाई यह है कि चूंकि परमात्मा का हमारे मन में कोई मूल्य नहीं है। इसलिए हम सोचते हैं कि दूसरे की आंख से भी काम चल जाएगा। जिंदगी में हम भलीभांति जानते हैं, अपने पैर चलाते हैं, अपनी आंखें दिखलाती हैं। लेकिन चूंकि परमात्मा का हमारे मन में कोई बहुत मूल्य नहीं है, इसलिए हम सोचते हैं, दूसरे की आंख से भी काम चल जाएगा। सच यह है कि शायद हमारे भीतर गहरी प्यास नहीं है परमात्मा को जानने की। नहीं तो यह असंभव था कि हम दूसरे पर विश्वास करके बैठे रहें। अगर प्यास गहरी होती तो हम अपनी आंख खोजते। और जो मैंने कल आपसे कहा है उसका केवल इतना ही मतलब है। विचार आपकी आंख है, विवेक आपकी आंख है। विश्वास आपकी आंख नहीं किसी और की है।

जो मेरा जोर था वह इस बात पर था कि विश्वास के द्वारा आप किसी और के माध्यम से सत्य को देखते हैं। यह प्रक्रिया गलत है। सत्य को सीधा देखा जा सकता है। सीधा और प्रत्यक्ष, किसी और के माध्यम से नहीं। विश्वास किसी और का सहारा लेता है, किसी और के माध्यम से देखता है। और क्या परिणाम होता है ऐसे विश्वास का? और ऐसे विश्वास और अंधेपन में लिए गए निष्कर्ष कैसे होते हैं?

रामकृष्ण एक कहानी कहते थे। रामकृष्ण कहते थे, एक अंधा आदमी था एक गांव में और उस अंधे आदमी के मित्रों ने एक बार उसे दावत दी और बहुत ही स्वादिष्ट खीर बनाई। उस अंधे ने उसे खाया और उसने पूछा, मेरे मित्रो, यह किस चीज से बनी है? उसके मित्रों ने कहा, यह दूध से बनी है। वह अंधा आदमी पूछने लगा, दूध कैसा होता है? वे मित्र उसी तरह के नासमझ रहे होंगे जिस तरह के उपदेशक अक्सर होते हैं। वे उसे समझाने बैठ गए कि दूध कैसा होता है। एक मित्र ने कहा, दूध होता है शुभ्र, सफेद। उस अंधे आदमी ने कहा, मैं समझा नहीं कि यह शुभ्र और सफेद क्या है। यह शब्द तो मैंने सुना है, लेकिन क्या है यह शुभ्रता? यह सफेदी क्या है? कैसी होती है? तो उन मित्रों ने कहा, तुमने बगुला देखा है? बगुले के सफेद पंख देखे हैं? ठीक बगुले के पंखों जैसी सफेदी होती है शुभ्र।

वह अंधा आदमी बोला, यह और मुश्किल हो गई। अभी मैं यह नहीं समझ पाया था कि दूध कैसा होता है, अभी यह नहीं समझ पाया था कि सफेदी कैसी होती है और एक नया प्रश्न तुमने खड़ा कर दिया यह बगुला कैसा होता है? मैं तो जानता नहीं बगुला। कुछ इस भांति बताओ कि पहेली हल हो जाए, तुम तो मेरी पहेली को और उलझाते चले जाते हो। पुराने प्रश्न तो पुरानी जगह खड़े हैं और नये प्रश्न खड़े हो जाते हैं। तुम्हारा उत्तर नया प्रश्न बन जाता है। कुछ ऐसा समझाओ कि मैं समझ सकूं।

वे चिंता में पड़े। और एक मित्र उसके पास गया, उस अंधे मित्र के पास सरका, उसने अपना हाथ उसके बगल में ले गया और कहा, मेरे हाथ पर हाथ फेरो, बगुले की गर्दन इसी की भांति होती है, झुके हुए हाथ की

तरह। उस अंधे आदमी ने उस मित्र के हाथ पर हाथ फेरा, वह खुशी से प्रसन्न हो उठा और उसने कहा, मैं समझ गया, मैं समझ गया, दूध झुके हुए हाथ की भांति होता है।

वे मित्र हैरान हो गए इस नतीजे पर! लेकिन जहां तक अंधे का सवाल है क्या उसके लॉजिक में कोई भूल है? उसके तर्क में कोई गलती है? उसने पूछा था, दूध कैसा होता है? कहा, सफेद। उसने पूछा था, सफेद कैसा होता है? कहा, बगुले की भांति। उसने पूछा, बगुला कैसा होता है? बताया उसकी गर्दन होती है झुके हाथ की भांति। उसने नतीजा लिया कि दूध झुके हुए हाथ की भांति होता है।

अंधे आदमी को रंग समझाने का यही मतलब हो सकता है और क्या मतलब होगा? उसके पास अपनी तो कोई आंख नहीं कि वह देख सके। वह तो अंधा है केवल विश्वास कर सकता है। और जो शब्द उसे बताए जाएंगे उनका अर्थ वह क्या लेगा? उनका अर्थ भी वह अपने अंधेपन के अनुसार ही ले सकता है।

तो इस भ्रम में न रहें कि कृष्ण ने जो कहा है वही आपने सुन लिया होगा। इस भ्रम में भी न रहें कि क्राइस्ट ने जो कहा है वही आप समझ गए होंगे। इस भ्रम में भी न रहें कि महावीर को आप पहचान गए होंगे कि उन्होंने क्या कहा है। उन्होंने जो आंख से देख कर कहा है वह हमने अपने अंधेपन में वैसा ही सुना होगा जैसा उस अंधे ने दूध के संबंध में सुना है। और वे ही हमारे विश्वास बन गए हैं।

वे विश्वास हमारे जीवन को कहां ले जाएंगे? अगर यह अंधा आदमी दूध की तलाश में निकल जाए और लोगों से पूछे कि झुके हुए हाथ जैसा दूध मुझे चाहिए, तो इस जमीन पर यह कहीं खोज पाएगा? इसका सारा जीवन इसके इस विश्वास के कारण गलत हो जाएगा। लेकिन इसमें भूल अंधे आदमी की नहीं थी, इसमें भूल उन मित्रों की थी जिन्होंने उसे समझाया।

अगर वे मित्र थोड़े भी समझदार होते तो उन्होंने यह समझाने की कोशिश न की होती। बल्कि उन्होंने कोशिश की होती कि इस अंधे आदमी की आंख ठीक हो जाए। उन्होंने इसके आंख के इलाज का उपाय किया होता। वे इसे किसी चिकित्सक के पास ले गए होते और कहते कि दूध को हम न समझाएंगे क्योंकि समझाने का कोई रास्ता नहीं है। और दूध को हम समझा भी देंगे तो तुम जान न सकोगे, केवल विश्वास कर सकोगे, और विश्वास बहुत गलत हो जाता है। तो हम तुम्हारी आंख की चिकित्सा के लिए ले चलते हैं। अगर वे मित्र उसके साथी होते और उससे प्रेम करते होते और समझदार होते तो उन्होंने उसका उपचार किया होता, उसे उपदेश न दिया होता।

इस जमीन पर जो लोग जानते हैं उनके लिए धर्म एक उपदेश नहीं एक उपचार है, एक चिकित्सा है, आंखों का खोलना है। विश्वास करना नहीं विवेक का जगाना है। वह जो भीतर सोया हुआ विवेक है अगर वह जाग जाए तो आप देख सकेंगे कि परमात्मा क्या है और कैसा है, सत्य क्या है और कैसा है, जीवन का अर्थ क्या है, वह आप देख सकेंगे। और आप देख सकें इसीलिए मैं कह रहा हूं कि आप माने नहीं, क्योंकि जो मान लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है।

जो नहीं मानता और जो इस बात पर अडिग रहता है कि जब तक मैं न जान लूंगा तब तक मैं नहीं मानूंगा, उसके प्राण आंदोलित रहते हैं, उसकी चेतना बेचैन रहती है, उसके भीतर एक अतृप्ति, एक डिस्कंटेंट निरंतर उसे धक्के देता रहता है कि मैं खोजूं और जानूं। लेकिन जो आदमी मान कर बैठ जाता है उसकी यात्रा बंद हो जाती है। उसके भीतर की अतृप्ति समाप्त हो जाती है। वह संतुष्ट हो जाता है। वह मान लेता है, ईश्वर है। वह मान लेता है, आत्मा है। वह सब मान लेता है और चुप हो जाता है।

जो मान लेता है उसके भीतर की खोज का अंत हो जाता है। लेकिन जो यह समझता रहता है कि मैं अभी नहीं जानता, मैं अज्ञान में हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं है, जो इस स्थिति को ताजा रखता है कि मैं नहीं जानता हूं, मैं अज्ञान में हूं, उसका अज्ञान उसके भीतर एक क्रांति बन जाता है, उसकी एक पीड़ा बन जाती है, उसका अज्ञान उसे धक्के देता है, उसकी आत्मा को जगाता है। क्योंकि कोई भी आदमी अज्ञान से तृप्त नहीं हो सकता, सहमत नहीं हो सकता, उसे बदलना चाहता है।

उसी बदलाहट की चेष्टा में से निकलती है साधना। उसी अतृप्ति से निकलता है अन्वेषण। उसी बेचैनी और अशांति में से पैदा होती है खोज। और वही खोज एक दिन पहुंचा देती है। वही प्यास एक दिन प्राप्ति तक ले जाने का मार्ग बन जाती है।

इसलिए मैं कहता हूंः विश्वास न करें, विचार करें; श्रद्धा न करें, सोचें, जीवन की समस्या को सोचें। अपनी तरफ से खुद, निजी खोज को जारी करें, वही खोज, वही खोज आपको व्यक्तित्व देगी, आत्मा देगी, वही खोज आपको कहीं ले जाने वाली बन सकती है। इसलिए मैंने कल आपसे कहा कि विश्वास नहीं, विचार।

विश्वास में तो हम सब हैं, हजारों वर्ष से हैं। और जमीन की क्या हालत हो गई है? आदमी के समाज की क्या हालत हो गई है? विश्वास में तो हम पाले गए हैं। दस हजार साल से आदमी विश्वास में ही पाला-पोसा गया है। परिणाम क्या है? परिणाम आदमी की तरफ देखिए क्या है? इससे ज्यादा और कोई विकृति हो सकती है? इससे ज्यादा और कुछ, और कुछ विनष्ट हो सकता है? इससे ज्यादा और कोई नारकीय जिंदगी हो सकती है जो हमने बना ली है।

पृथ्वी को हमने एक नरक में परिवर्तित कर दिया है। घृणा और हिंसा और असत्य और बेईमानी, वे सब हमारे जीवन में घर कर गए हैं। और इन सबकी शुरुआत किस बात से होती है? शायद लोग आपको कहें कि इसकी शुरुआत नास्तिकों ने करवा दी; शायद वे आपसे कहें कि ये भौतिकवादी, ये मैटीरियलिस्ट, वैज्ञानिक, इन सबने यह सब खराबी करवा दी है।

गलत कहते हैं ऐसे लोग, झूठ, सरासर झूठ कहते हैं। यह तो वैसे ही है जैसे मेरे घर का दीया बुझ जाए और मैं जाकर कहूं कि अंधेरा आ गया और उसने मेरे दीये को बुझा दिया। नहीं साहब, अंधेरा आकर दीये को नहीं बुझाता है, दीया जब बुझ जाता है तभी अंधेरा आता है।

दुनिया में जो मैटीरियलिज्म है, उसके कारण धर्म का दीया नहीं बुझ गया है, धर्म का दीया बुझ चुका है इसलिए मैटीरियलिज्म है, इसलिए इतनी भौतिकता है। यह भौतिकवाद का परिणाम नहीं है कि धर्म मिट गया है, धर्म नहीं है इसलिए भौतिकवाद है। यह तो इतनी गड़बड़ और बेचैनी और दुख भरी बात है। कोई अगर यह कहता है कि भौतिकवादियों के कारण, नास्तिकों के कारण, वैज्ञानिकों के कारण, कम्युनिस्टों के कारण दुनिया से धर्म मिट गया, इससे ज्यादा झूठी और बेहूदी बात नहीं हो सकती। इसका मतलब यह है कि धर्म बहुत कमजोर है और भौतिकवाद बहुत ताकतवर है। यह बिल्कुल उलटी बात है।

भौतिकवाद क्या धर्म के दीये को बुझाएगा? वह तो आता ही तब है जब धर्म का दीया मौजूद नहीं होता है। वह तो अंधेरे की तरह है। घर का दीया बुझ जाए और हम अंधेरे को गालियां देते रहें कि अंधेरा बहुत बुरा है, इसने आकर दीया बुझा दिया। तब तो फिर दीया जलाने की कोई आशा न रह जाएगी। क्योंकि दीया जलाने के लिए जरूरी होगा कि अंधेरे को निकाल कर हम बाहर कर दें, तब दीया जल सकता है, नहीं तो दीया नहीं जलेगा। और अगर हम अंधेरे को निकालने में लग गए, तो हम तो मिट जाएंगे अंधेरा नहीं निकल सकता। अंधेरे को निकालने का कोई भी उपाय नहीं है। या अंधेरा बढ़ जाए और हम धक्के दें, तो अंधेरा निकलेगा?

अंधेरा न तो लाया जा सकता है और न निकाला जा सकता है। क्यों? क्योंकि वस्तुतः अंधेरा है ही नहीं। अगर होता तो हम उसे ला भी सकते थे और निकाल भी सकते थे। वह है ही नहीं, वह केवल प्रकाश की गैर-मौजूदगी है, एब्सेंस है। उसका अपना कोई होना नहीं, उसका अपना कोई एक्झिस्टेंस नहीं, उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं।

प्रकाश हो तो अंधेरा नहीं है और प्रकाश न हो तो उस न होने का नाम ही अंधेरा है, अंधेरे की अपनी कोई सत्ता नहीं है। इसलिए हम प्रकाश जला सकते हैं, प्रकाश बुझा सकते हैं लेकिन न तो अंधेरा जला सकते हैं और न अंधेरा बुझा सकते हैं। अंधेरे के साथ कुछ भी नहीं किया जा सकता।

तो भौतिकवादियों के कारण और नास्तिकों के कारण दुनिया में यह विकृति नहीं आ गई। यह विकृति आ गई है धर्म का दीया बुझा हुआ है इसलिए। और धर्म का दीया क्यों बुझा हुआ है? धर्म का दीया इसलिए बुझा हुआ है कि उसमें तेल की जगह पानी भर दिया है। उसमें विचार और विवेक की जगह श्रद्धा भर दी है। विवेक का तेल होता तो दीये की ज्योति जलती। श्रद्धा का पानी भर दिया है। असल में श्रद्धा का पानी भरना आसान है, मुफ्त मिल जाता है, गली-कूचे में हर जगह मिल जाता है। तेल में तो कुछ मूल्य चुकाना पड़ता है। विवेक में तो जीवन का मूल्य चुकाना पड़ता है, श्रम करना पड़ता है। श्रद्धा मुफ्त मिल जाती है। विश्वास मुफ्त मिल जाता है। विचार में तो श्रम और सामर्थ्य लगानी पड़ती है। इसलिए श्रद्धा और विश्वास का पानी भर दिया है डबरों से लाकर। अब दीया बुझ न जाए तो क्या हो? विश्वास के पानी ने धर्म का दीया बुझा दिया है। विवेक का तेल हो तो धर्म का दीया जल सकता है।

इसलिए मैंने कल आपसे कहा, छोड़ें विश्वास को और जगाएं विवेक को। और ठीक से स्मरण रखें कि जो विश्वास को छोड़ता है केवल उसका ही विवेक जग सकता है। जो विश्वास को पकड़ता है, उसका विवेक नहीं जग सकता। क्योंकि विश्वास को पकड़ने का मतलब यह है, अगर इसे ठीक से पहचानेंगे, विश्वास पकड़ने का अर्थ है कि मुझे स्वयं पर विश्वास नहीं है। विश्वास आत्म-अविश्वास का नाम है। जब मैं दूसरे पर विश्वास करता हूं, उसका मतलब है मुझे अपने पर विश्वास नहीं है। अगर मैं राम पर विश्वास करता हूं और कृष्ण पर और महावीर पर और बुद्ध पर, उसका मतलब क्या है? उसका मतलब है मुझे अपने पर विश्वास नहीं है।

बुद्ध जिस दिन मरे, उनका एक शिष्य और प्यारा भिक्षु आनंद रोने लगा, उसकी आंखों में आंसू भर गए, बुद्ध को विदा का क्षण आ गया था और बुद्ध ने कहा था अंतिम बात पूछनी हो तो पूछ लो। आनंद रोने लगा। तो बुद्ध ने कहा, आनंद अपनी आंख से आंसू पोंछ ले। क्योंकि अगर तू यह सोचता हो कि मेरे रहने से तेरे जीवन में प्रकाश था तो तू भूल में है। अपना दीया खुद बन। अपना प्रकाश खुद बन। दूसरे का प्रकाश किसी को प्रकाशित नहीं करता है। इसलिए मेरे विदा होने से कोई अंतर नहीं आता। तू दुखी मत हो। क्योंकि आनंद रोने लगा और कहने लगा, अब आप चले जाएंगे तो अंधकार हो जाएगा। बुद्ध ने कहा, तू भूल में है। अगर अंधकार है तेरे लिए तो मेरे होने से भी अंधकार होगा और अगर प्रकाश है तेरे भीतर तो मेरे न हो जाने से भी कोई फर्क नहीं पड़ता। और मेरी ज्योति को अपनी ज्योति समझने के भ्रम में मत रहना। खुद का दीया जला, खुद की ज्योति जला। वही साथी है, वही है साथी। किसी और का दीया साथी नहीं हो सकता है। इसलिए मैंने कहा कि विवेक और विचार, विश्वास नहीं।

इस संबंध में एक प्रश्न और पूछा है।

पूछा है कि विश्वास तो सिखाना ही पड़ेगा बच्चे को। छोटे बच्चों को अगर हम विश्वास न सिखाएंगे तो उनको कुछ भी नहीं सिखा सकेंगे।

मैंने यह नहीं कहा है कि बच्चे को आप यह न सिखाएं कि रास्ते पर बाएं चलना चाहिए, यह मैंने नहीं कहा है। यह मैंने नहीं कहा है कि स्वतंत्रता का यह अर्थ है कि रास्ते पर जहां चलना हो वहां चलो, यह मैंने नहीं कहा है। रास्ते पर बाएं चलना बिल्कुल कामचलाऊ बात है, सत्य का उससे कोई संबंध नहीं है, हम जीवन के व्यवहार मात्र की बात है। हिंदुस्तान में हम बाएं चलते हैं और अमेरिका में दाएं चलते हैं, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वहां की सड़कों पर लिखा है, दाएं चलो, यहां की सड़कों की पर लिखा है, बाएं चलो। ये कामचलाऊ बातें हैं, ये कोई सत्य नहीं है। ये जीवन के लिए उपयोगी हैं।

पूछा है कि अगर हम बच्चे को न बताएं कि कौन तुम्हारा पिता है? कौन तुम्हारी मां है?

ये भी कामचलाऊ बातें हैं। ये भी बाएं और दाएं चलने से ज्यादा इनका मूल्य नहीं है। अगर एक बच्चे को बचपन से ही उसका झूठा पिता बता दिया जाए कि वह तुम्हारा पिता है, तो उससे भी काम चल जाएगा। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। जीवन भर काम चल सकता है। ऐसे तो कौन किसका पिता है, सारी बातें कामचलाऊ हैं।

बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने घर वापस लौटे थे। तो उनके पिता क्रुद्ध थे, गुस्से में थे। बारह साल पहले वह लड़का उन्हें छोड़ कर चला गया। एक ही लड़का था। बारह साल बाद उनके लड़के की कीर्ति सब तरफ फैल गई थी। लेकिन पिता का क्रोध समाप्त नहीं हुआ था। दूर-दूर से खबरें आने लगी थीं कि उनका लड़का कुछ और हो गया, ज्योतिर्मय हो गया, प्रबुद्ध हो गया। लाखों लोग उसे स्वीकार किए हैं। हजारों भिक्षु उसके पीछे चल पड़े हैं। उसने एक नया रास्ता तोड़ दिया है परमात्मा तक जाने का। लेकिन ये खबरें बुद्ध के पिता के क्रोध को न तोड़ सकीं।

आखिर बुद्ध का आगमन फिर उस गांव में हुआ जिसमें वे पैदा हुए थे। बारह साल बाद पिता उनके गांव के बाहर उन्हें लेने गए। पूरा गांव लेने गया। पिता ने जाते से ही पहली बात यही कही कि सिद्धार्थ तू वापस लौट आ, मेरे दरवाजे अभी भी खुले हैं, पिता का प्रेम बहुत बड़ा है, तूने चोट तो बहुत पहुंचाई कि तू घर छोड़ कर चला गया, मेरे बुढ़ापे में अकेला लड़का है तू, लेकिन अभी भी वापस लौट आ, मैं तेरी प्रतीक्षा करता हूं, आखिर मैं तेरा पिता हूं और तुझे माफ कर दूंगा, मेरे द्वार खुले हैं, तू वापस लौट चल। यह शोभा नहीं देता कि मेरा लड़का भिक्षा का पात्र लिए हुए सड़कों पर चले।

बुद्ध ने क्या कहा? बुद्ध ने अपने पिता से कहा, मुझे ठीक से तो देखें, जो लड़का आपके घर से गया था वही वापस लौटा है या मैं दूसरा मनुष्य होकर आया हूं? मुझे एक बार ठीक से तो देख लें। इन बारह वर्षों में गंगा में बहुत पानी बह गया। मैं वही नहीं हूं। लेकिन पिता तो, क्रोध से उनकी आंखें धुंधली हो रही थीं, उन्होंने कहा, क्या तू मुझे यह भी सिखाएगा कि मैं अपने लड़के को नहीं पहचानता? मैंने ही तुझे पैदा किया, मेरा ही खून तेरी नसों में है।

बुद्ध ने कहा, भूलते हैं आप। गलती में हैं आप। मैं आपके द्वारा पैदा तो हुआ, लेकिन आप मेरे बनाने वाले नहीं हैं। मैं आपके रास्ते से दुनिया में तो आया, लेकिन रास्ता निर्माता नहीं होता है।

मैं जिस रास्ते से चल कर अभी इस गांव तक आया हूं अगर वह रास्ता कहने लगे कि तुम मेरे ऊपर चले थे, मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं, तो जैसी भूल हो जाएगी वैसी पिता और मां भी भूल कर जाते हैं। बच्चे उनसे होकर आते हैं लेकिन उनसे पैदा नहीं होते। पैदा होने का सूत्र बहुत गहरा है। मां-बाप उसमें उपकरण से ज्यादा नहीं, इंस्टमेंट से ज्यादा नहीं है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये कोई बड़ी सच्चाइयों की खोजें नहीं हैं। तो आप कह दें कि कौन पिता है, कौन मां। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। जिंदगी की कामचलाऊ बातों के लिए विश्वास काम दे सकता है, क्योंकि जिंदगी खुद एक सपना है, उसमें झूठे विश्वास काम दे सकते हैं। लेकिन जो जीवन के सत्य को खोजने निकला हो, सत्य को खोजने निकला हो, उसके आधार विश्वास पर नहीं रखे जा सकते, क्योंकि विश्वास असत्य है। और सत्य की खोज असत्य से शुरू नहीं की जा सकती। सत्य की खोज तो सत्य से ही शुरू करनी होगी। और पहला सत्य यही है कि हम नहीं जानते जीवन को, हम नहीं जानते परमात्मा को, हम नहीं जानते आत्मा को, सुनी हुई बातें हैं ये लेकिन हमारा जानना नहीं है। यह पहला सत्य है। इस अज्ञान का बोध पहला सत्य है। और विश्वास इस बोध को मिटा देते हैं, जो सबसे बड़ी खतरनाक बात है। वे इस बोध को मिटा देते हैं कि मैं नहीं जानता हूं, बल्कि इस अहंकार को पैदा कर देते हैं कि मैं जानता हूं। पंडित में यही अहंकार तो प्रगाढ़ हो जाता है कि मैं जानता हूं।

मैं जानता हूं। क्या जानते हैं हम? राह पर पैर के नीचे जो कंकड़-पत्थर पड़े हैं उनको भी नहीं जानते। द्वार पर जो वृक्ष लगे हैं उनको भी नहीं जानते। आकाश में जो तारे निकलते हैं उनको भी नहीं जानते। पास-पड़ोस में जो लोग बैठे हैं उनको भी नहीं जानते। एक पिता अपने पुत्र को नहीं जानता। एक पति अपनी पत्नी को

नहीं जानता। एक मां अपने बेटे को नहीं जानती। एक भाई अपने भाई को नहीं जानता। क्या जानते हैं हम? जीवन है इतना रहस्यपूर्ण, कुछ भी नहीं जानते हैं हम। लेकिन विश्वास इस भ्रम को पैदा कर देते हैं कि हम जानते हैं।

एक आदमी ईश्वर तक के संबंध में दावे से बोलने लगता है कि मैं जानता हूं-कि उसके चार मुंह हैं, कि दो मुंह हैं, कि कितने हाथ हैं, कहां रहता है, कहां नहीं रहता, यह सब मैं जानता हूं। एक कंकड़ को भी हम जानते नहीं। एक पत्ते को भी हम जानते नहीं। हवा के एक झोंके को भी हम जानते नहीं। जीवन बिल्कुल रहस्यपूर्ण है और हमारा अज्ञान है गहन। लेकिन विश्वास के द्वारा, किताबों से सीखे गए शब्दों के द्वारा यह इल्युजन पैदा हो जाता है, यह भ्रम पैदा हो जाता है कि मैं जानता हूं। और धर्म की खोज में, सत्य की खोज में यह भ्रम सबसे बड़ी बाधा है। क्योंकि जिसे यह खयाल पैदा हो गया कि मैं जानता हूं, उसका सीखना बंद हो गया, उसकी लर्निंग बंद हो गई। अब वह सीखेगा नहीं, क्योंकि वह जानता है।

इसलिए तथाकथित पंडित जो तोतों की भांति सारे ग्रंथों को रट लेते हैं उनका सीखना हमेशा के लिए बंद हो जाता है। वे मर गए। अब उनकी जिंदगी में कोई सीखना नहीं है, कोई गति नहीं है।

इसलिए मैंने कहा कि विश्वास नहीं, विचार। विचार करेगा मुक्त, खोलेगा द्वार, सीखने के द्वार खोल देगा, रास्ते उन्मुक्त करेगा। इस अहंकार को तोड़ देगा कि मैं जानता हूं और इस विनम्रता को, इस ह्यूमिलिटी को पैदा करेगा कि मैं नहीं जानता हूं।

जिस दिन आपको यह सच में दिखाई पड़ जाए कि मैं नहीं जानता हूं, उस दिन आपके भीतर एक धार्मिक आदमी का जन्म हो गया। क्योंकि न जानने का भाव आपको विनम्र कर देगा। न जानने का भाव आपको निर-अहंकारी कर देगा। न जानने का भाव आपके आग्रह, पंथ, संप्रदाय तोड़ देगा, आप खड़े हो जाएंगे और कहेंगे कि मैं तो नहीं जानता हूं। छोटे बच्चे की तरह एक सरलता, एक इनोसेंस इस भाव के साथ पैदा होगी। और वह सरलता इतनी बहुमूल्य है कि उसके समक्ष दूसरों के द्वारा सीखे गए विश्वास दो कौड़ी के भी नहीं है। उस निर्दोष स्थिति में ही, उस इनोसेंस में ही, जीवन सत्य की तरफ आंखें उठ सकती हैं। इसलिए मैंने कहा कि विश्वास नहीं, विचार।

और कुछ दूसरे प्रश्न मित्रों ने पूछे हैं।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि अगर श्रद्धा नहीं तब तो भक्ति के लिए भी कोई जगह नहीं रह जाएगी।

एक और मित्र ने अगस्तीन का एक उद्धरण दिया है और पूछा हैः अगस्तीन ने कहा है, श्रद्धा का अर्थ है उन चीजों में विश्वास जो दिखाई नहीं पड़तीं, और जो आदमी ऐसा विश्वास कर लेता है, परिणाम में उसे वे चीजें फिर दिखाई पड़ने लगती हैं जो कि पहले दिखाई नहीं पड़ती थीं।

और भी दो-तीन प्रश्न इस तरह श्रद्धा और भक्ति के लिए पूछे गए हैं।

सबसे पहली बात तो मैं आपसे यह कहूं, यह अगस्तीन का वाक्य बहुत सही है लेकिन उस अर्थों में नहीं जिसमें अगस्तीन ने कहा होगा, बल्कि और दूसरे अर्थों में। निश्चित ही जो चीजें नहीं दिखाई पड़तीं उनमें अगर विश्वास कर लें तो धीरे-धीरे वे दिखाई पड़ सकती हैं। लेकिन दिखाई पड़ने से यह मत समझ लेना कि वे हैं। आपके विश्वास ने यह भ्रम पैदा किया है उनके दिखाई पड़ने का। वे चित्त के प्रोजेक्शन हैं। खुद मन की ही कल्पनाएं हैं। जरूर दिखाई पड़ने लगेंगी विश्वास करने से, लेकिन दिखाई पड़ने से यह मत सोच लेना कि वे हैं। वे विश्वास के द्वारा पैदा हो गई हैं। बाहर पैदा नहीं हो गई हैं, केवल चित्त में पैदा हो गई हैं। थोड़ी इस बात को समझें तो ये खयाल में आ सकती हैं।

जो लोग बहुत भावप्रवण हैं, बहुत इमोशनल हैं, उन्हें इस तरह की चीजें देख लेना बहुत आसान है। जो लोग चित्त से बहुत कमजोर हैं, उन्हें भी इस तरह की चीजें देख लेना बहुत आसान है। चित्त जितना कमजोर हो

उतनी कल्पनाओं को साकार रूप में देख लेना आसान है। दुनिया के कवि, चित्रकार या इस तरह के भावप्रवण लोग ऐसी चीजें देखते रहते हैं जो आपको बिल्कुल दिखाई नहीं पड़तीं।

लियो टाल्सटाय का नाम आपने सुना होगा। रूस के बड़े विचारशील लेखकों में से एक, बहुत भावप्रवण। एक रात वोल्गा के किनारे दो बजे रात अंधेरे में पुलिस के द्वारा टाल्सटाय पकड़ा गया। वोल्गा के ऊपर एक ब्रिज पर हमेशा खतरा रहता था। वह आत्महत्या करने वालों का अड्डा था। वहां निराश और दुखी लोग जाकर कूद जाते और आत्महत्या कर लेते। तो वहां एक पुलिस के सिपाही का हमेशा पहरा रहता था। रात थी आधी, टाल्सटाय वहां घूमता हुआ देखा गया। उस पुलिस के आदमी ने दो-चार बार देखा फिर वह आया, उसने टाल्सटाय के कंधे पर हाथ रखा और कहा कि महानुभाव! इरादे ठीक नहीं मालूम पड़ते हैं, यहां किसलिए इतनी रात को आप मौजूद हैं?

टाल्सटाय बोला, मेरे मित्र, तुम थोड़ी देर से आए जिसको कूदना था वह कूद चुका, मैं तो केवल उसको विदा करने आया था। वह कांस्टेबल तो घबड़ा गया। उसने कहा कि मैं मौजूद हूं, अभी तो मुझे कोई भी दिखाई नहीं पड़ा कि कूदा हो। कौन कूदा है? तो टाल्सटाय ने कहा, पावलोवना नाम की स्त्री, नहीं पहचानते हो? फलां-फलां आदमी की पत्नी थीं, नहीं पता है? फलां-फलां मोहल्ले में रहती थीं, नहीं खयाल है?

उस आदमी ने कहा, भाई, मेरे साथ चलो थाने और वहां जाकर सब बात लिखा दो। वे दोनों थाने की तरफ चले। रास्ते में अचानक टाल्सटाय हंसने लगा, तो उसने पूछा, क्यों हंसते हैं? उसने कहा, बस अब रहने दो, मैं जाता हूं। असल में थोड़ी भूल हो गई। मैं एक उपन्यास लिख रहा हूं और उसमें एक पावलोवना नाम की स्त्री है, वह आज, जहां तक उपन्यास पहुंचा है वहां वोल्गा में कूद कर आत्महत्या कर लेती है। और मैं इतना अभिभूत हो गया उसकी आत्महत्या से कि घर से उठ कर ब्रिज पर चला आया। और मैं भूल गया तुमसे कहना, अब मुझे खयाल आता है कि वह किसी सच्चे आदमी की बात नहीं, मेरी ही कल्पना की बात है। मैं घर वापस जाता हूं।

टाल्सटाय एक दफा सीढ़ियां चढ़ रहा था, एक छोटी सी लाइब्रेरी जा रहा था, ऊपर संकरी सीढ़ियां थीं, दो आदमी निकल सकते थे। वह खुद चढ़ रहा था और उसके साथ एक औरत और चढ़ रही थी, वह भी उसके उपन्यास की एक पात्र, जिससे वह बातचीत करता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। कवि और पागल अक्सर यह करते रहते हैं। उन लोगों से बातें करते हैं जो कहीं भी नहीं हैं। ऊपर चढ़ रहा था। ऊपर से एक आदमी नीचे उतर रहा था। सीढ़ियां थीं संकरी और दो ही निकल सकते थे, तीन के लायक जगह न थी, बीच में थी औरत। और यह उन्नीस सौ सत्रह की क्रांति के पहले की बात है। अब तो रूस में औरत को धक्का दे सकते हैं, तब धक्का नहीं दे सकते थे। तो ऊपर से एक आदमी उतर रहा है, कहीं धक्का न लग जाए, बीच में औरत है, तो टाल्सटाय बचा जगह करने को और सीढ़ियों से नीचे गिर पड़ा और टांग तोड़ ली और तीन महीने अस्पताल में रहा। वह दूसरा आदमी नीचे उतरा, उसने कहा, बड़ी हैरानी की बात है, आप हटे क्यों? हम दो के लायक काफी जगह थी। टाल्सटाय ने कहाः दो होते थे तो ठीक था, वहां तीन थे, वहां एक औरत और थी। कोई औरत, कोई औरत दिखाई नहीं पड़ रही? टाल्सटाय हंसा और उसने कहा, तुम्हें दिखाई नहीं पड़ेगी और अब टांग टूट जाने से मुझको भी दिखाई नहीं पड़ रही। लेकिन जब तक मैं सरका तब मेरे साथ थी और भ्रम हो गया और मैं सरक गया उसको बचाने को और टांग टूट गई।

अगर दुनिया के कवियों और साहित्यिकों का जीवन पढ़ेंगे, तो आपको दिखाई पड़ेगा कि उनमें से अधिक लोग अपने पात्रों से बातचीत करते रहे हैं। वे पात्र उन्हें मौजूद मालूम पड़ते हैं कि हैं। अगर इन कवियों को सनक सवार हो जाए और ये भक्त हो जाएं तो इनको भगवान के दर्शन करने में देर लगेगी? इनको कोई देर न लगेगी। ये जिस प्रकार के भगवान चाहेंगे उस प्रकार के भगवान के दर्शन कर लेंगे। बांसुरी बजाने वाले भगवान चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे और धनुर्धारी भगवान चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे और सूली पर लटके क्राइस्ट को

देखना चाहेंगे तो वे मौजूद हो जाएंगे। लेकिन जिस तरह इनके पात्र कल्पना के हैं इनके भगवान भी कल्पना के होंगे। आज तक जितने भी भगवान देखे गए हैं वे सभी कल्पना के हैं। क्योंकि भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कि देखा जा सके। भगवान एक अनुभूति है, व्यक्ति नहीं कि देखा जा सके। इसलिए जिस प्रकार का भी भगवान देखा जाएगा, वह भगवान मनुष्य की कल्पना की सृष्टि है, उसका मेंटल क्रिएशन है। फिर अपने हाथ में है, मुरलीवालों को देखना हो उनको देखें, और धनुर्धारी को देखना हो तो उनको देखें, और चतुर्मुखी भगवान को देखना हो तो उनको देखें।

और नीग्रो देखता है जिस भगवान के उसके ओंठ नीग्रो जैसे होते हैं और बाल नीग्रो जैसे होते हैं। और चीनी देखता है जिस भगवान को उसकी हड्डियां उभरी होती हैं और रंग पीला होता है। और हिंदू जिस भगवान को देखता है वह भारतीय शक्ल में होता है। और दुनिया में जो अपने भगवान को देखना चाहता है अपनी शक्ल में देख लेता है। अगर गधे और घोड़े भी भगवान को देखते होंगे तो अपनी शक्ल में देखते होंगे आदमी की शक्ल में नहीं। अगर पशु-पक्षी भगवान को देखते होंगे तो अपनी शक्ल में देखते होंगे आपकी शक्ल में नहीं। हमारी कल्पनाएं, हमारा रूप, हमारा निर्मित है यह भगवान जिसको हम श्रद्धा और भक्ति में देख लेते हैं। यह कोई साक्षात नहीं है सत्य का।

सचाई यह है कि जब तक कुछ भी दिखाई पड़ता है चित्त में, तब तक मन काम कर रहा है। और सत्य का या परमात्मा का, और स्मरण रखें, परमात्मा से मेरा अर्थ किसी रूप, किसी रंग से नहीं, किसी आकार से नहीं, बल्कि समस्त जीवन, समस्त अस्तित्व, यह जो टोटल एक्झिस्टेंस है, यह जो सारी चीजों के भीतर व्याप्त प्राण हैं इसके अनुभव से है। इसका कोई दर्शन नहीं हो सकता। इसका अनुभव हो सकता है।

एक आदमी को प्रेम का अनुभव हो सकता है, लेकिन कोई आदमी आकर सूरत में खबर करे कि आज रात मुझे प्रेम का दर्शन हुआ है, तो गड़बड़ हो गई बात।

प्रेम के दर्शन का क्या मतलब? प्रेम कोई आदमी है जिसका दर्शन हो जाएगा? कोई वस्तु है जिसका दर्शन हो जाएगा? प्रेम का अनुभव हो सकता है, दर्शन नहीं। प्रेम एक जीवंत अनुभूति है, एक एक्सपीरिएंस है। परमात्मा और भी गहरी अनुभूति है। परमात्मा का भी दर्शन नहीं हो सकता, अनुभव हो सकता है। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ सकता। लेकिन परमात्मा को जाना जा सकता है। और जानने का रास्ता यह नहीं है कि आप कोई कल्पना करें। जानने का रास्ता यह है कि सब कल्पना छोड़ दें और शून्य हो जाएं। जब तक कोई कल्पना है तब तक उस कल्पना को जानने की कोशिश रहे, चेष्टा, श्रम, तो वह कल्पना जानी जा सकती है। और उसको जानने के उपाय हैं। कल्पना जानने के उपाय हैं।

सारी दुनिया के बहुत बड़ा धार्मिक लोगों का हिस्सा, साधु-संतों का हिस्सा, गांजा, अफीम, चरस पीता रहा है। अभी अमरीका में मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड की हवा है। और उसको पीने वाले हक्सले ने कहाः उसका इंजेक्शन लगवाने वाले लोगों ने कहा कि जो कबीर को, मीरा को जो अनुभव हुए होंगे, वे हमको मैस्कलीन का इंजेक्शन लगाने से होते हैं। हमको भगवान दिखाई पड़ता है।

अगर हिंदू को मैस्कलीन का इंजेक्शन लगा दें तो कृष्ण दिखाई पड़ जाएंगे। और क्रिश्चियन को लगा दें तो क्राइस्ट दिखाई पड़ जाएंगे। जो कल्पना भीतर बैठी है, नशे की हालत में और जल्दी साकार हो जाती है। इसलिए दुनिया भर में साधु नशा करते रहे, यह आकस्मिक नहीं है, यह एक्सिडेंटल नहीं है। कल्पना को बल देने में नशा बड़ा सहयोगी है। जो लोग नशा नहीं करते रहे, वे लोग उपवास करते रहे हैं। और यह बात जान लेना जरूरी है। दो ही तरह के वर्ग हैं दुनिया में साधुओं के, या तो नशा करने वाला या उपवास करने वाला। और आप हैरान होंगे, जो काम नशे से होता है वही उपवास से भी हो जाता है।

नशे से कुछ मादक द्रव्य शरीर में पहुंच जाते हैं, जो चित्त के होश को कम कर देते हैं। होश कम हो जाता है तो कल्पना जल्दी से साकार होने लगती है। बेहोशी में कल्पना साफ दिखाई पड़ने लगती है। बेहोशी में

विचार बिल्कुल नहीं रह जाता, इसलिए यह खयाल भी नहीं उठता कि जो मैं देख रहा हूं वह सच है या झूठ, यह विचार भी पैदा नहीं होता, जो दिखता है सच मालूम होता है।

सपने में रोज आप देखते हैं, सपना कभी आपको सपने के भीतर झूठ मालूम पड़ता है? कभी आपको ऐसा लगा कि यह मैं सपना देख रहा हूं, यह झूठ है? जागने पर लगता होगा, लेकिन सपने के भीतर सभी सपने सच मालूम पड़ते हैं। क्योंकि विचार नहीं होता निद्रा में, इसलिए जो दिखाई पड़ता है सच मालूम पड़ता है। विचार पूछता है कि जो है वह सच है या झूठ? और विचार न हो तो पूछने वाली कोई चीज आपके भीतर न रहेगी, फिर जो है वह सच है। नींद में आपका विचार सोया हुआ है। तो जो भी सपना दिखाई पड़ता है वह मालूम होता है सच है। जागने पर जब विचार जग आता है तब यह शक पैदा होता है कि अरे यह सपना झूठ था, लेकिन सपने में कभी सपना झूठ नहीं होता। ऐसे ही नशे के भीतर कभी नशे में दिखाई पड़ने वाली चीजें झूठ नहीं होतीं। नशे के द्वारा कल्पना तीव्र हो जाती है विचार मंदा हो जाता है। तो जो सपने की स्थिति होती है वह वास्तविक जागते हुए हो जाती है। उपवास से भी यही हो जाता है। उपवास से शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है। आपको गहरा बुखार आया हो और बहुत दिन खाना न मिला हो, तो आपको पता होगा, कैसी-कैसी कल्पनाएं दिखाई पड़ने लगती हैं। खाट आसमान में उड़ती हुई मालूम पड़ सकती है। देवतागण हवा में घूमते हुए दिखाई पड़ सकते हैं। भूत-प्रेत छायाओं में दिखाई पड़ सकते हैं।

शरीर हो जाता है कमजोर, चित्त हो जाता है कमजोर, कमजोर चित्त फिर विचार करने में असमर्थ हो जाता है कि जो है वह सच है या झूठ, फिर कल्पना साकार हो जाती है।

तो अगर तीस वर्ष तक, बीस वर्ष तक कोई किसी भगवान के रूप को बना कर जपता रहे, जपता रहे, जपता रहे; आंख बंद करके भगवान को देखता रहे, देखता रहे, देखता रहे; नशा करे, उपवास करे, रोए-धोए, छाती पीटे, नाचे-गाए, तो दस-बीस वर्षों में अगर ये भगवान दिखाई पड़ने लगें तो यह मत समझ लेना कि ये भगवान हैं इसलिए दिखाई पड़ते हैं। यह आदमी बड़ा मेहनती है इसने भगवान पैदा कर लिए। यह इसका श्रम है, यह इसकी कल्पना को दिया गया बल है। सारे चित्त को लगाई गई चेष्टा है, इसमें कहीं कोई भगवान नहीं है।

और इसलिए यह भी हो सकता है कि अगर तुलसीदास को, मीरा को और अगस्तीन को तीनों को इस कमरे में रात बंद कर दिया जाए, तो अगस्तीन को न राम दिखाई पड़ेंगे न कृष्ण, दिखाई पड़ेंगे क्राइस्ट। मीरा को न क्राइस्ट दिखाई पड़ेंगे न राम, दिखाई पड़ेंगे कृष्ण। तुलसीदास को न दिखाई पड़ेंगे क्राइस्ट, न दिखाई पड़ेंगे कृष्ण, दिखाई पड़ेंगे राम। उसी एक कमरे में तीनों को तीन भगवान दिखाई पड़ेंगे और बाकी के दो भगवान दिखाई नहीं पड़ेंगे और सुबह वे विवाद करेंगे आपस में कि तुम्हारे भगवान तो थे ही नहीं, मेरे ही भगवान थे।

जो जिसने निर्मित कर लिया है वही दिखाई पड़ सकता है। आज तक धर्म के नाम पर बहुत तरह की कल्पनाएं प्रचलित रही हैं। और उन कल्पनाओं को अनुभव करने वाले लोग निश्चित इस खयाल में पड़ जाते हैं कि जो अनुभव हुआ वह सत्य का अनुभव है। और उनको कोई कसूर भी नहीं देता। जहां तक उनका संबंध है वे जो जानते हैं उनको बिल्कुल ठीक मालूम पड़ता है, उसमें उनका कोई कसूर भी नहीं। कसूर है तो एक कि वे उस विचार की फैक्लिटी को सुला देते हैं, जो निर्णय कर सकती थी कि जो है वह सच है या झूठ।

विश्वास इसीलिए इतने जोर से थोपा जाता है ताकि आपके भीतर का विचार सो जाए। अगर भीतर विचार है तो फिर इस तरह की कल्पनाओं को अनुभव करना संभव नहीं है। इसलिए विचार की हत्या की कोशिश की जाती है। जब विचार मर जाता है, सपने देखना आसान हो जाता है। और उन सपनों में आनंद भी मिलेगा, आनंद भी आएगा। क्योंकि वे सपने खुद के द्वारा निर्मित हैं इसलिए दुखद नहीं हो सकते, सुखद ही होंगे। और भगवान का दर्शन हो गया है, यह बड़े आनंद की बात है। इससे अहंकार की इतनी बड़ी तृप्ति होती है जितनी किसी और चीज से नहीं होती।

मुझे भगवान का दर्शन हो गया, मैंने भगवान को पा लिया, मैं भगवान को जानने वाला हूं और कोई भी नहीं। इसलिए इन भगवान को जानने वाले लोगों से अगर पूछें कि वह दूसरा आदमी भी कहता है कि मैं

भगवान को जानने वाला हूं, वे हंसेंगे, वे कहेंगे, गलती कहता है। जानने वाला तो मैं ही हूं और कोई नहीं जानने वाला है। इसलिए तो दुनिया भर के साधु-संत लड़ते हैं आपस में कि मैं जानने वाला हूं, दूसरा जानने वाला नहीं है।

अगर दुनिया कभी अच्छी हुई तो इस तरह के मस्तिष्क का इलाज होना चाहिए। यह मस्तिष्क विकृत है। यह मस्तिष्क स्वस्थ नहीं है।

तो न तो श्रद्धा और न भक्ति कहीं ले जाती है। ले जाता है सिर्फ ज्ञान। कोई और मार्ग नहीं है, और सारे मार्ग सिर्फ दिखाई पड़ने वाले मार्ग हैं। ज्ञान के अतिरिक्त, जागरण के अतिरिक्त, स्वयं की चेतना के पूरी तरह विकसित होने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। बाकी मार्ग सिर्फ दिखाई पड़ते हैं। सिर्फ दिखाई पड़ते हैं, है नहीं। और वे दिखाई पड़ने वाले मार्ग आसान हैं, क्योंकि उन पर चलना नहीं होता केवल सपना देखना होता है, केवल कल्पना करनी होती है।

ज्ञान का मार्ग कठिन दिखाई पड़ता है, क्योंकि उस पर चलना होता है, जीवन को बदलना होता है, अग्नि से गुजरना होता है, प्राण को काट-काट कर विकसित करता होता है भीतर किसी चेतना को। न तो नींद काम दे सकती है, न नशा, न कोई सपने काम दे सकते हैं। इसलिए श्रद्धा के छूटने से अगर भक्ति छूटती हो तो बहुत अच्छा, वे दोनों जुड़े हैं। वह एक ही चीज का विकास है। विश्वास और श्रद्धा जाएगा तो भक्ति के खड़े होने के लिए कोई जगह नहीं है। नींद चली जाए तो सपने के खड़े होने को कोई जगह नहीं रह जाती। श्रद्धा की नींद में भक्ति के सपने आते हैं। श्रद्धा की नींद न हो तो भक्ति के सपनों की कोई जगह नहीं है। और उस भांति का जो जागरण है और उस जागरण में जो जाना और देखा गया है, वही सत्य है।

स्मरण रखें, जहां मैं पूरी तरह प्रबुद्ध हूं, पूरी तरह विचार और विवेक से युक्त, और जहां मेरे मन पर कोई तंद्रा, कोई मादकता, कोई नशा, कोई कल्पना नहीं, उस परिपूर्ण जागरण में ही मैं जो जानूंगा वही सत्य हो सकता है और कुछ सत्य नहीं हो सकता। ऐसी परिपूर्ण जागरण की जो अवस्था है वही ज्ञान है।

सोना चाहते हो, बात अलग; नींद लेना चाहते हो, बात अलग, तब भक्ति और श्रद्धा काम दे सकती है। तब भक्ति और श्रद्धा पुराने रास्ते हो गए। मैस्कलीन और लिसर्जिक एसिड भी काम दे सकते हैं। और भी ढंग के नशे हैं वे भी काम दे सकते हैं। नशा कर लें और सपने देखें।

लेकिन सपनों से कोई जीवन नहीं बदलता। सपनों से कोई क्रांति नहीं आती। सपनों से कोई भीतर बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। आप वही के वही आदमी बने रहते हैं। यह जो, यह जो चित्त का परिपूर्ण क्रांति है, दि टोटल म्यूटेशन जो है, पूरी बदलाहट जो है, वह बदलाहट तो सिर्फ जागरण से होती है। और उस जागरण का प्राथमिक सूत्र है, विवेक और प्राथमिक शत्रु है, विश्वास। इसलिए विश्वास नहीं विवेक; निद्रा नहीं जागरण; बेहोशी नहीं होश, ये जितने विकसित होंगे उतना जीवन सत्य के निकट पहुंचना आसान हो जाता है।

अंतिम रूप से एक छोटे प्रश्न की और चर्चा करूंगा और फिर चर्चा बंद करूंगा।

कुछ मित्रों ने पूछा है कि मैंने कहा कि मंदिर में जाना धर्म नहीं है, मूर्ति की पूजा करना धर्म नहीं है, भगवान की स्तुति करना खुशामद है, अगर ऐसा है तब तो फिर धर्म कुछ बचता ही नहीं। विश्वास भी करना नहीं, पूजा भी करनी नहीं, प्रार्थना भी करनी नहीं, मंदिर भी जाना नहीं, तब तो फिर धर्म बचता नहीं।

लेकिन शायद मेरी बात समझ में नहीं आई। अगर मेरी बात समझ में आ जाए जो इन सबको छोड़ कर जो बच रहता है वही धर्म है। नहीं समझ में आई उसके कारण हैं। पहली बात, मैंने आपसे यह कहा कि मूर्ति को पूजना धर्म नहीं है, उसका क्या अर्थ? उसका यह अर्थ कि जो व्यक्ति मनुष्य निर्मित मूर्तियों से बंध जाता है वह उस परमात्मा को कभी नहीं जान सकेगा जो कि मनुष्य निर्मित नहीं है।

यह मूर्ति भगवान नहीं है। यह मूर्ति तो मनुष्य की बनाई हुई है। और मनुष्य क्या भगवान को बना सकता है? मनुष्य भगवान को बना सके तब तो बड़ा आश्चर्य पैदा हो जाए। मनुष्य अपने को मिटा ले तो भगवान को जान सकता है लेकिन भगवान को बना ले तब तो न स्वयं को जान सकता है और न भगवान को जान सकता है। भगवान को पाने का रास्ता भगवान बनाना नहीं है बल्कि खुद को मिटाना है।

मनुष्य अपने को मिटा ले उसकी हम कल सुबह बात करेंगे कि वह कैसे अपने को मिटा ले, वह न हो जाए।

कल संध्या मैं जहां बोलने गया था, तो मेरे सामने ही एक तख्ती पर लिखा हुआ थाः गॉड इ.ज एवरीथिंग एंड मैन इ.ज समथिंग। लिखा थाः ईश्वर सब कुछ है और मनुष्य थोड़ा कुछ, समथिंग। गलत है यह बात। गॉड इ.ज एवरीथिंग एंड मैन इ.ज नथिंग। ईश्वर सब कुछ है, मनुष्य कुछ भी नहीं है।

यह समथिंग जानने का जो भ्रम है कि मैं कुछ हूं, यही अस्मिता, यही अहंकार, यही ईगो, मनुष्य कुछ है यह जानने का जो खयाल है, यह एकदम भ्रामक है। जिस दिन मनुष्य जान पाता है कि मैं तो कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण वह जान लेता है कि परमात्मा सब कुछ है। ये अनुभव एक साथ घटित होते हैं। जिस क्षण मनुष्य जानता है मैं कुछ भी नहीं हूं, उसी क्षण, तत्क्षण जान लेता है कि परमात्मा सब कुछ है। और जब तक वह जानता है मैं कुछ हूं, तब तक परमात्मा के द्वार बंद हैं, वे नहीं खुलेंगे। यह अहंकार बाधा बन जाएगा, रुकावट बन जाएगा।

और यही अहंकार बनाता है मंदिर, यही अहंकार गढ़ता है मूर्तियां, यही अहंकार निर्मित करता है संप्रदाय। इसीलिए तो संप्रदाय लड़ते हैं। अगर संप्रदाय धर्म होते तो लड़ाई कैसे संभव थी? लड़ाई तो वहीं होती है जहां अहंकार होता है, नहीं तो लड़ाई नहीं होती। जहां अहंकार है वहां युद्ध है, वहां संघर्ष है। अहंकार लड़ाता है। मैं कुछ हूं, आप भी कुछ हैं, फिर लड़ाई होनी जरूरी है। यह सारा का सारा खेल जो हमें दिखाई पड़ता है हम सोचते हैं धर्म है, इसलिए डर पैदा होता है। कौन से मंदिर में धर्म है? और अगर मंदिरों में धर्म हो तब जमीन पर बहुत धर्म होता है क्योंकि मंदिर बहुत हैं। मंदिरों की कोई कमी है? सारी पृथ्वी मंदिर, चर्चों और मस्जिदों से भरी है। धर्म कहां है लेकिन? अगर इनसे धर्म होता तो और हम थोड़े मंदिर और चर्च बना लें तो धर्म बढ़ जाए, लेकिन हालत उलटी है, जितने मंदिर बढ़ते हैं उतना अधर्म बढ़ता है। हालत उलटी है, मंदिर और चर्चों के बढ़ने से धर्म नहीं बढ़ा। इनमें जाने वाले लोग धार्मिक हैं? अगर इनमें जाने वाले लोग धार्मिक हैं तो वे कौन से मुसलमान थे जिन्होंने हिंदुओं की हत्या की? और वे कौन से हिंदू हैं जो मुसलमानों की हत्या करते हैं? वे कौन से कैथेलिक हैं जो प्रोटेस्टेंट को मारते रहे हैं? वे कौन से प्रोटेस्टेंट हैं जो उनके दुश्मन हैं? इन मंदिरों और मस्जिदों में जाने वाले लोग अगर धार्मिक हैं तो फिर ये धर्म के नाम पर इन मंदिरों और मस्जिदों से निकली हुई हत्याओं का ब्योरा कौन देगा? कौन करेगा यह हिसाब? इतनी हत्या फिर किसके सिर जाएगी?

नहीं साहब, यह मंदिर और मस्जिद में जाने वाला आदमी बड़ा खतरनाक है। यह किसी भी दिन आग लगवा सकता है। क्योंकि जिस दिन यह चुनता है कि यह मंदिर धर्म का है उसी दिन यह कहने लगता है कि दूसरा जो चर्च है और मस्जिद है वह धर्म की नहीं है। और जो धर्म का नहीं है उसको मिटाना इसका कर्तव्य हो जाता है। जिस दिन यह चुनाव करता है कि यह मस्जिद भगवान की है, उसी दिन यह कह देता है यह जो मंदिर है मूर्ति वाला यह भगवान का नहीं शैतान का है। इसकी च्वाइस, इसके चुनाव में घोषणा हो गई दूसरे के अधर्म होने की, अब लड़ाई शुरू होगी।

और यह जो आदमी एक मंदिर को सोचता है कि यहां जाने से मैं धार्मिक हो जाऊंगा, इससे ज्यादा बचकानी और चाइल्डीश कोई बात हो सकती है? एक आदमी तेईस घंटे अधार्मिक है और एक मकान की सीढ़ियां चढ़ता है और घंटे भर के लिए धार्मिक हो सकता है? क्या चेतना ऐसी कोई चीज है? गंगा बहती है

हिमालय से और गिरती है सागर में। अगर कोई कहे कि काशी में आ कर गंगा पवित्र हो जाती है, पहले भी अपवित्र थी और आगे भी अपवित्र, सिर्फ काशी के घाट पर पवित्र हो जाती है। तो हम हंसेंगे कि यह पागल है। क्योंकि जो गंगा पीछे थी वही तो काशी के घाट से भी निकलेगी। और जो काशी के घाट से निकलेगी वही तो आगे भी जाएगी। आगे भी अपवित्र, पीछे भी अपवित्र, तो काशी के घाट पर पवित्र हो जाती है, कैसे हो सकता है? अगर यह नहीं हो सकता तो तेईस घंटा चेतना की जो गंगा अपवित्र थी वह एक घंटा मंदिर में पवित्र कैसे हो सकती है? वही तो चेतना है। वही तो धारा है। वही तो गंगा है। केवल मंदिर की सीढ़ियां चढ़ने से वह पवित्र हो जाएगी? गलती में हैं आप। यह आदमी दूसरों को तो धोखा दे ही रहा है, खुद को भी धोखा दे रहा है। अगर आंख बंद करके भीतर देखेगा तो पाएगा, वही चेतना चल रही है। वही हिसाब, वही पाप, वही हिंसा, वही हत्याओं की योजना चल रही है भीतर, वे ही सिक्के गिने जा रहे हैं।

एक आदमी मर रहा था एक बार। बहुत बड़ा धनपति था। बहुत बड़ा व्यवसायी था। मरणशय्या पर पड़ा था। आखिरी क्षण थे और चिकित्सकों ने कहाः आज का सूरज अंतिम होगा। सूरज ढलने को था। वह भी ढलने को था। उसने एकदम आंख खोली, उसकी पत्नी उसके पैरों तले बैठी थी और उसने पूछा कि मेरा बड़ा लड़का कहां है? तो उसकी पत्नी को खयाल आया कि शायद प्रेम से भर कर वह पूछ रहा है। क्योंकि उस आदमी ने कभी यह नहीं पूछा था कि मेरा बड़ा लड़का कहां है?

जो पैसे के हिसाब में रहता है वह प्रेम का हिसाब कभी भी नहीं कर पाता। या तो पैसे का हिसाब होता है या प्रेम का हिसाब होता है। ये दोनों खजाने एक साथ नहीं भरे जा सकते। इसलिए जिसके पास जितनी पैसे की पकड़ होती है प्रेम उतना ही क्षीण हो जाता है। और जिसका प्रेम विराट होता है उसके पैसे की पकड़ चली जाती है।

तो जिंदगी भर उसने पैसे के हिसाब तो पूछे थे कि रुपया कहां है, लेकिन उसने यह कभी नहीं पूछा था मेरा बड़ा लड़का कहां है? उसकी पत्नी ने सोचा, आज शायद प्रेम से भर कर उसे खयाल आ गया, अंतिम क्षणों में शायद वह प्रेम से भर गया है। अच्छा है, धन्य भाग्य है यह कि अंतिम क्षण उसके प्रेम और प्रार्थना से भरे हुए हों। तो उसने कहाः आप निश्चिंत रहें, आपका बड़ा लड़का आपके बगल में ही बैठा हुआ है। और उसने पूछाः उससे छोटा? उसकी पत्नी और भी अनुगृहीत हो गई कि वह सबकी याद कर रहा है। उसकी पत्नी ने कहा, वह भी आपके बगल में बैठा हुआ है। उसने पूछाः उससे छोटा? वह भी बगल में बैठा हुआ है। उससे छोटा? उसके पांच लड़के थे, उसने पांचों के बाबत पूछा। और अंत में वह एकदम उठ कर बैठ गया और उसने कहाः इसका क्या मतलब, फिर दुकान पर कौन बैठा हुआ है?

वह अब भी पैसों का ही हिसाब कर रहा था। वह पत्नी गलती में थी कि वह प्रेम का लेखा-जोखा कर रहा है अंतिम क्षणों में।

असल में जिसने जीवन भर पैसे का हिसाब किया हो अंतिम क्षण में भी वह पैसे का ही हिसाब करेगा। अंतिम क्षण में भी, और जो मंदिर की सीढ़ियों के बाहर पैसों का हिसाब करता रहा, वह मंदिर के भीतर भी पैसों का हिसाब करेगा। उसकी बंद आंखें देख कर भूल में मत पड़ जाना। उसके भीतर वही हिसाब चल रहा है जो बाहर चल रहा था। उसके चंदन और टीका को देख कर धोखे में मत पड़ जाना। वह चंदन और टीका लगाते वक्त भी वही हिसाब चल रहा है जो बाहर चल रहा था। यह वही आदमी है। आदमी ऐसे नहीं बदला करता। आदमी बदलता है तो पूरा बदलता है, नहीं तो नहीं बदलता। आदमी की कोई खंड-खंड बदलाहट नहीं होती। कोई ऐसा नहीं होता एक घड़ी को अच्छा हो जाए और दस घड़ी को बुरा हो जाए। ऐसा नहीं होता। चेतना इकट्ठी है, वह पूरी बदलती है। तो जिसकी चेतना पूरी बदलती है वह मंदिर नहीं जाता बल्कि वह जहां भी जाता है वहीं पाता है कि मंदिर है। जिसकी चेतना बदल जाती है वह किसी परमात्मा की तलाश में किसी मकान में नहीं जाता बल्कि जहां भी आंख डालता है पाता है कि परमात्मा है।

मंदिर जाने वाला धार्मिक नहीं है, लेकिन जो आदमी हर क्षण अपने को मंदिर में पाता है वह धार्मिक जरूर है। भगवान की मूर्ति पूजने वाला धार्मिक नहीं है, लेकिन जो हर मूर्ति में पाता है कि भगवान है, वह धार्मिक है। जो हर मूर्ति में पाता है कि भगवान है। हर मूर्तिमंत जो भी आकार है उसमें उसी निराकार की ध्वनि और संगीत उसे सुनाई पड़ता है, वह धार्मिक है। लेकिन जो कहता है इस मूर्ति में भगवान है, इससे तो पक्का जान लेना कि उसे अभी पता नहीं। क्योंकि वह यह कहता है इस मूर्ति में भगवान है, इसका मतलब है कि बाकी जगह और क्या है? शेष जगह और क्या है फिर? शेष जगह भगवान नहीं है? चुनाव, सिलेक्शन इस बात को बता देता है कि शेष जगह नहीं है। यहां है, इसलिए मैं इतनी यात्रा करके इस मंदिर तक आता हूं। नहीं तो सब जगह वही था।

ये जो, ये जो हमारे चित्त के खंड-खंड हमने धर्म बनाए हुए हैं, ये अपने को धोखा देने के लिए, सेल्फ डिसेप्शन के लिए, ताकि बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने का मजा आ जाए। सुबह उठ कर मंदिर हो आए, सोचा कि धार्मिक हैं।

मोहम्मद एक दिन सुबह अपने एक मित्र को उठा कर मस्जिद ले गए। वह रोज सोया रहता था। उस दिन उसे उठा कर लेकर मस्जिद ले गए। वह पहली दफा मस्जिद गया। जब वापस लौटते थे तो अनेक लोग रास्तों पर अभी तक सोए हुए थे। उस मित्र ने मोहम्मद से कहाः देखते हो हजरत, ये लोग कैसे अधार्मिक हैं अभी तक सो रहे हैं। मोहम्मद ने हाथ जोड़े परमात्मा की तरफ आकाश में और कहाः हे परमात्मा! क्षमा कर, मुझसे भूल हो गई इस आदमी को ले जाकर। कल तक यह बेहतर था, कम से कम दूसरों को अधार्मिक तो नहीं समझता था। आज और एक भूल हो गई। आज यह एक दफा मस्जिद क्या हो आया, यह कह रहा है कि मैं धार्मिक हूं और बाकी ये सब अधार्मिक हैं। उस आदमी से कहाः भई, तू कल से मत आना। और तू वापस जा, मेरी नमाज खराब हो गई है, मैं फिर से जाकर नमाज पढ़ आऊं।

यह जिसको हम धार्मिक आदमी समझते हैं, जो मंदिर हो आता है, यह बड़ा मजा ले रहा है आपको अधार्मिक बताने का और बड़े सस्ते में। धार्मिक होना बड़ी दूसरी बात है, इतनी सस्ती और आसान नहीं। बड़ी क्रांति की बात है।

वह क्रांति कैसे घटित हो सकती है उसके दो सूत्रों की चर्चा मैंने आपसे की, कल तीसरे सूत्र की आपसे चर्चा करूंगा।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। अंत में सभी के भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

चौथा प्रवचन

वस्त्र आपकी पहचान तो नहीं?

मेरे प्रिय आत्मन्!

एक छोटी सी घटना से मैं अपनी चर्चा शुरू करना चाहूंगा।

एक राजा शिकार को निकला था। जंगल में रास्ता भटक गया, रात हो गई, अपने साथियों से बिछुड़ गया। दूर थोड़ा सा प्रकाश दिखाई पड़ा, उस ओर गया, पाया कि जंगल के बीच ही एक छोटी सी सराय थी। वह उसमें ठहरा। सुबह उसने उस सराय के मालिक को कहा, क्या कुछ अंडे मिल सकेंगे? अंडे उपलब्ध थे। उसने सुबह अंडे लिए, दूध लिया और पीछे पूछा कि क्या दाम हुआ? उस सराय के बूढ़े मालिक ने कहा, सौ रुपये। वह राजा हैरान हो गया। उसने बड़ी महंगी चीजें जीवन में खरीदी थीं लेकिन दो अंडों के दाम सौ रुपये होंगे इसकी उसे कल्पना भी नहीं थी। उसने उस सराय के मालिक को कहा, आर एग्स सो रेयर हियर? क्या अंडे इतनी मुश्किल से यहां मिलते हैं कि सौ रुपये उनके दाम हो जाएं? वह बूढ़ा मालिक हंसा और उसने कहा, एग्स आर नॉट रेयर सर, बट किंग्स आर। उसने कहा, अंडे तो मुश्किल से नहीं मिलते, लेकिन राजा बड़ी मुश्किल से मिलते हैं। उस राजा ने सौ रुपये निकाले और दे दिए।

उस बूढ़े सराय के मालिक की पत्नी बहुत हैरान हुई। राजा के जाते ही उसने पूछा कि हद हो गई, तुम सौ रुपये निकाल सके उस राजा के खीसे से दो अंडों के लिए? कौनसी तरकीब उपयोग में लाई? कौनसा रहस्य है इसका?

वह बूढ़ा आदमी बोलाः मैं आदमी की कमजोरी जानता हूं।

उसकी औरत ने पूछाः यह आदमी की कमजोरी क्या है? क्या है यह आदमी की कमजोरी?

वह बूढ़ा बोलाः तुझे मैं एक और घटना सुनाता हूं, उससे शायद तुझे आदमी की कमजोरी समझ में आ जाए।

मैं जवान था और मैं एक बहुत बड़े सम्राट के दरबार में गया। मैंने एक पांच रुपये में सस्ती सी पगड़ी खरीदी थी। लेकिन उसे बहुत अच्छे ढंग से रंगवाया था, बड़े चमकदार उसके रंग थे। मैं वह पगड़ी बांध कर दरबार में पहुंचा। अजनबी था उस देश में। राजा ने दरबार में मेरी पगड़ी देखते ही पूछा, इस पगड़ी के क्या दाम हैं? मैंने कहा, एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं। वह राजा हंसा और बोला क्या कहते हो, एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं? और तभी उसके वजीर ने राजा के कान में कहाः महाराज, सावधान रहें, यह आदमी बड़ा चालाक मालूम पड़ता है। दो-चार रुपये की पगड़ी है और हजार स्वर्ण-मुद्राएं दाम बता रहा है। लुटेरा मालूम होता है।

उस बूढ़े आदमी ने कहाः मैं समझ गया कि वजीर क्या कह रहा है। क्योंकि वजीर राजा को लूटता रहा होगा। वह दूसरे लुटेरे को पसंद नहीं करेगा। लेकिन, मैंने तभी कहा कि मैं जाता हूं फिर। राजा ने पूछाः कैसे आए और कैसे चले? तो मैंने कहाः मैंने जिस आदमी से यह पगड़ी खरीदी थी, मैं भी डरा था। और मैंने कहाः एक हजार स्वर्ण-मुद्राएं? तो वह आदमी मुझसे बोला थाः इस जमीन पर एक ऐसा सम्राट भी है जो इसके पांच हजार स्वर्ण-मुद्राएं भी दे सकता है। तो मैं जाऊं, यह वह दरबार नहीं है, यह वह सम्राट नहीं है जिसको मैं खोज रहा हूं? मुझे कोई और दरबार में जाना पड़ेगा, कोई और सम्राट खोजना पड़ेगा। तो मैं जाऊं? उस सम्राट ने कहाः दस हजार स्वर्ण-मुद्राएं इसे दे दी जाएं और पगड़ी खरीद ली जाए।

दस हजार स्वर्ण-मुद्राओं में मेरी पगड़ी बिक गई। वजीर बहुत हैरान हुआ। और जब मैं दरबार से रुपये लेकर बाहर निकल रहा था, तो वजीर ने मुझसे पूछा कि मेरे मित्र, थोड़ा मुझे समझाओ तो कि राज क्या है इस

बात का? यह पगड़ी पांच रुपये से ज्यादा की नहीं है। तो मैंने उस वजीर के कान में कहाः मेरे मित्र, तुम्हें पगड़ियों के दाम मालूम होंगे मुझे आदमियों की कमजोरियां मालूम हैं।

यह आदमी की कमजोरी क्या है? इस पर ही आज सुबह मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं। और आदमी की जो कमजोरी है वही परमात्मा के मार्ग पर रुकावट है। और आदमी की जो कमजोरी है वही उसके जीवन में प्रकाश आने में बाधा है। और आदमी की जो कमजोरी है वही दीवाल है जो द्वार को नहीं खुलने देती और जीवन दुख और पीड़ा से भर जाता है, अंधकार से भर जाता है।

क्या है आदमी की कमजोरी? यह क्या है ह्यूमन वीकनेस?

अहंकार आदमी की कमजोरी है। दंभ, ईगो आदमी की कमजोरी है। मैं कुछ हूं, यह आदमी की कमजोरी है। और जब तक कोई इस कमजोरी से घिरा है, तब तक वह किन्हीं मंदिरों की तलाश करे और किन्हीं शास्त्रों को पढ़े और कैसी ही पूजाएं करे और कैसे ही त्याग और उपवास करे, संन्यासी हो जाए और जंगलों में चला जाए, कोई फर्क न पड़ेगा, बल्कि यह कमजोरी इतनी अदभुत है कि वे सब चीजें भी इसी कमजोरी को और मजबूत करने में कारण बन जाएंगी।

एक आदमी के पास लाखों रुपये हों, वह उनका त्याग कर दे, तो हम कहेंगे, यह परमात्मा के रास्ते पर चला गया। लेकिन इतनी आसान बात नहीं है परमात्मा के रास्ते पर जाना। रुपयों से परमात्मा को खरीदना आसान नहीं है कि कोई रुपये छोड़ दे और परमात्मा को खरीद ले। बल्कि यह भी हो सकता है और यही होता है कि वह आदमी रुपये छोड़ कर भी उसी कमजोरी से भरा रह जाएगा जो कमजोरी रुपयों के होते हुए थी।

एक संन्यासी ने मुझसे कहा, मैंने लाखों रुपयों पर लात मार दी। एक बार कहा, दो बार कहा, तीन बार कहा। मेहमान था मैं उनके आश्रम में। फिर चलते वक्त मैंने उनसे पूछाः यह लात आपने कब मारी थी? उन्होंने कहाः कोई तीस वर्ष हुए। मैंने उनसे कहाः अगर बुरा न माने तो मैं निवेदन कर दूं, लात ठीक से लग नहीं पाई, अन्यथा तीस वर्षों के बाद भी उसकी याद कैसे हो सकती थी?

लाखों रुपये आपके पास रहे होंगे तब यह अहंकार रहा होगा कि मेरे पास लाखों रुपये हैं, मैं कुछ हूं, उस समबडी होने का खयाल रहा होगा। फिर लाखों रुपये छोड़ दिए, तब से यह खयाल है कि मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं, मैं कुछ हूं। मैंने लाखों रुपये छोड़े हैं! वह जो अहंकार लाखों रुपये के होने से भरता था वह अहंकार अब लाखों रुपये के छोड़ने से भी भर रहा है। कमजोरी वहीं की वहीं है। बात वहीं अटकी है उसमें कोई फर्क नहीं आया।

धन वाले का अहंकार होता है, धन छोड़ने वाले का अहंकार होता है। अच्छे वस्त्र पहनने वाले का अहंकार होता है, सादे वस्त्र पहनने वाले का अहंकार होता है। बड़े मकान बनाने वाले का अहंकार होता है, झोपड़ियों में रहने वाले का अहंकार होता है। अहंकार के बड़े सूक्ष्म रास्ते हैं। वह न मालूम किन-किन रूपों से अपनी तृप्ति कर लेता है। न मालूम किन-किन रूपों से यह खयाल पैदा हो जाता है मैं कुछ हूं।

एक आदमी सारे वस्त्र छोड़ कर नग्न खड़ा हो जाए उसका अहंकार होता है कि मैं कुछ हूं। तुम, तुम जो कपड़े पहने हुए हो तुम क्या हो, ना-कुछ, मैं हूं कुछ, जिसने सब वस्त्र भी छोड़ दिए और नग्न हो गया हूं।

इसीलिए तो संन्यासियों के अहंकार को छूना गृहस्थियों के हाथ की बात नहीं। त्याग करने वाले का अहंकार इसलिए बड़ा हो जाता है कि भोग तो छीना जा सकता है त्याग छीना भी नहीं जा सकता। मेरे पास कपड़े हैं और उनका अहंकार है, तो कपड़े तो छीने भी जा सकते हैं लेकिन अगर मैं नंगा खड़ा हो गया, तो मेरी नग्नता कैसे छीनी जा सकती है। वह संपत्ति ऐसी है जिसे मुझसे कोई नहीं छीन सकता। अगर मेरे पास करोड़ों रुपये हैं तो कल नष्ट भी हो सकते हैं, खो भी सकते हैं, चोरी भी जा सकते हैं, मेरा अहंकार टूट भी सकता है, लेकिन अगर मैंने लाखों रुपये छोड़ दिए, तो मैंने छोड़ दिए हैं लाखों रुपये, इससे छूटने का अब कोई उपाय नहीं है, इससे मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है।

यह अहंकार, यह मैं कुछ हूं, सबसे बड़ी भ्रांति है जो मनुष्य को पकड़ लेती है। कोई कारण नहीं है इस भ्रांति के पकड़ लेने का। कोई बुनियाद नहीं है। यह अहंकार का भवन बिल्कुल बेबुनियाद है, इसका कोई आधार नहीं है, इसकी कोई नींव नहीं है, यह मकान बिल्कुल ताश के पत्तों का है। लेकिन जैसे ताश के पत्तों का महल बनाने में एक सुख मालूम होता है, वैसे ही इस अहंकार को खड़े होने में भी एक सुख मालूम होता है।

क्यों मनुष्य अपने अहंकार को खड़ा करना चाहता है? कौन से कारण हैं उसके अहंकार को खड़ा करने के? पहला कारण तो यह है कि कोई भी मनुष्य यह नहीं जानता कि वह कौन है? यह बात इतनी घबड़ाने वाली है, यह अज्ञान इतना पीड़ा देने वाला है, इतनी एं.जायटी पैदा करने वाला है कि मुझे पता भी नहीं कि मैं कौन हूं? इस अज्ञान को ढांकने के लिए मैं कोई उपाय कर लेता हूं, कहने लगता हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं धनपति हूं, मैं त्यागी हूं, मैं ज्ञानी हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं।

जरूरी है, यह इतनी घबड़ाने वाली बात है कि मैं अपने को नहीं जानता। यह इतनी ज्यादा ह्यूमिलिएटिंग है, यह इतनी ज्यादा अपमानजनक है कि मैं अपने को नहीं जानता। तो मैं किसी भांति अपना एक रूप खड़ा कर लेता हूं, कहने लगता हूं, मैं यह हूं, कौन कहता है कि मैं अपने को नहीं जानता?

इस भांति एक सेल्फ डिसेप्शन, एक आत्मवंचना देकर हम अपनी तृप्ति खोज लेते हैं कि मैं कुछ हूं। लेकिन क्या इस भांति हम अपने को जान पाते हैं? क्या आप जानते हैं कि आप कौन हैं? क्या आपको पता है कि क्या है वह जो आपके भीतर जीवंत है? वह जो लीविंग कांशसनेस है, वह जो चेतना है आपके भीतर, जो जीवन है वह क्या है? कुछ पता है उसका? झूठी बातें न दोहरा लें अपने मन में कि मैं आत्मा हूं। किताब में पढ़ लिया होगा इससे कुछ पता नहीं होता है। यह मत कह लें अपने मन में कि मैं ईश्वर का अंश हूं। पढ़ लिया होगा कहीं इससे काई फर्क नहीं पड़ता है।

सचाई यह है कि पता नहीं भीतर क्या है? तथ्य यह है कि नहीं मालूम कौन भीतर बैठा है? और उस व्यक्ति को जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं, क्या उसके जीवन में सत्य का कोई अवतरण हो सकता है? जिसे यह भी पता न हो कि मैं कौन हूं वह भी अगर ईश्वर की खोज में निकल पड़े तो पागल है।

एक संन्यासी पश्चिम की यात्रा करके भारत वापस लौटा था। वह एक राजा के महल में मेहमान हुआ। वह राजा बूढ़ा हो गया था और वर्षों से लोगों से पूछता था, जो भी संन्यासी, ज्ञानी उसके गांव में आ जाते थे उनसे पूछता था, क्या मुझे ईश्वर से मिला दे सकते हो? वे ज्ञानी और त्यागी और संन्यासी-गीता की, उपनिषदों की और सारे ज्ञान की बातें करते थे, लेकिन वह राजा रोक देता था कि नहीं, बातचीत मत करो, मैं तो मिलना चाहता हूं ईश्वर से, मिला सकते हो तो बोलो? हां कहो या न कहो। निश्चित ही कौन हां कहता उससे? राजा जीत जाता था और वे संन्यासी हार जाते थे और चुप रह जाते थे।

यह संन्यासी भी, नया संन्यासी भी उसके घर मेहमान हुआ। वह सुबह ही उसके पास पहुंचा और उसने कहा, एक मेरा प्रश्न है और एक ही मेरा प्रश्न है दूसरा मेरा प्रश्न नहीं है। और यह आपको जता दूं कि यह प्रश्न मैं सैकड़ों लोगों से पूछ चूका हूं और आज तक कोई उत्तर नहीं दे सका, और यह भी मैं आपको बता दूं कि मैं बातचीत नहीं चाहता हूं, मैं ठोस, ठोस उत्तर चाहता हूं।

संन्यासी ने कहाः पहले प्रश्न पूछें।

उस राजा ने कहाः मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूं, मिला सकते हैं? सीधा उत्तर दें, बातचीत और सिद्धांत नहीं चाहिए। सोचा था जैसे और संन्यासी निरुत्तर रह गए थे, वह भी रह जाएगा। लेकिन वह बड़ा अजीब संन्यासी रहा होगा।

उसने कहाः मेरे मित्र, अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर ठहर सकते हैं?

राजा थोड़ा चिंतित हुआ। उसकी यह आशा न थी, अपेक्षा न थी। सोचा कि शायद कोई भूल हो गई है। शायद वह कोई ईश्वर नाम वाले आदमी की बात समझ गया है।

तो राजा ने कहाः माफ करें, सोचता हूं कोई भूल हो गई है, मैं परमात्मा की बात कर रहा हूं, परमात्मा से मिलने की बात कर रहा हूं, मुझसे मिला सकते हैं?

उस संन्यासी ने कहाः आप अब बातचीत न करें। ठोस उतर आएं मैदान में। अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर रुक सकते हैं? बातचीत मुझे भी पसंद नहीं है। अब बकवास मैं नहीं सुनूंगा।

राजा थोड़ा हैरान हुआ। इतनी तैयारी उसकी भी न थी। अगर आपको भी मैं पकड़ लूं गर्दन से और कहूं, अभी मिलना है ईश्वर से? तो आप कहेंगे, मैं थोड़ा घर पूछ आऊं, अपने गार्जियन की सलाह ले आऊं, अपनी पत्नी से या अपने पति से पूछ आऊं या थोड़े अपने बच्चों से पूछ लूं, या इतनी जल्दी क्या है? फिर थोड़े दिन बाद भी हो सकता है मिलना। वह राजा थोड़ा मुश्किल में पड़ गया। जिस मुश्किल में वह दूसरे लोगों को डालता रहा था वह मुश्किल आज उसके ऊपर ही गिर गई थी। आज मस्जिद मुल्ला के ऊपर गिर गई थी।

वह बोला कि क्या मतलब है आपका? संन्यासी ने कहाः मतलब साफ है। बातचीत क्यों कर रहे हैं? आपका क्या मतलब था, ईश्वर से मिलना है न? राजा ने कहा, हां, मिलना तो है।

थोड़ा डरा हुआ था। ईश्वर से मिलने में कोई भी डर जाएगा। क्योंकि ईश्वर के सामने खुद को खड़े करने की सामर्थ्य तभी हो सकती है जब आप खुद अपने सामने खड़े हो गए हों। नहीं तो बड़ा भय मालूम होगा कि मेरे जैसा आदमी ईश्वर के सामने खड़ा होगा तो क्या स्थिति बनेगी? कैसा दीन-हीन हूं? इस शक्ल को लेकर, इस आदमी को लेकर ईश्वर के सामने कैसे जाऊं? उसकी किरणें तो छेद देंगी और पार कर देंगी। और मेरे भीतर जो सारी कुरूपता है, जो अग्लीनेस है वह उभर कर बाहर आ जाएगी। तो क्या मैं इस योग्य हूं कि उसके सामने खड़ा हो जाऊं? आंखें मजबूत चाहिए सूरज की तरफ देखने के लिए, नहीं तो आंखें झप जाएंगी। और प्राण भी मजबूत चाहिए परमात्मा के समक्ष खड़े होने को, नहीं तो अंधापन पैदा हो जाएगा।

वह घबड़ा आया था, लेकिन खुद ही प्रश्न पूछा था इसलिए मजबूरी थी। उसने कहा कि हां, अब आप कहते हैं तो अभी ही मिला दें। ऐसे वह बहुत सुस्त हो गया था और घबड़ा गया था। और डरा हुआ था कि अब क्या होने वाला है? यह आदमी बहुत गड़बड़ मालूम होता है।

उस संन्यासी ने कहाः इतने भयभीत न हों, क्योंकि ईश्वर मिलने को राजी भी हो जाए तो शायद आप खुद अभी राजी नहीं हैं। एक छोटा सा कागज ले लें और उस पर लिख दें कि आप कौन हैं, ताकि मैं पहुंचा दूं ईश्वर के पास।

राजा ने कहाः यह तो ठीक है, मुझसे भी कोई मिलने आता है तो मैं पूछ लेता हूं नाम, ठिकाना, पता, कौन हो? क्या हो? हर किसी से तो मैं भी नहीं मिलता हूं। राजा ने लिखा उस कागज पर अपना नाम, लिखा कि मैं फलां राज्य का मालिक हूं, फलां महल में रहता हूं, यह, वह, सब बातें लिखीं। बड़ी उपाधियां थीं उसकी, बड़ी पदवियां थीं, वे सब लिखीं, और वह कागज संन्यासी के हाथ में दिया।

वह संन्यासी हंसने लगा। और उसने कहा, बड़े झूठे हैं आप। अपना पता लिखें, यह सब क्या लिखा हुआ है?

राजा ने कहा, शक मुझे पहले ही हो गया था कि मैं किसी पागल से मिल रहा हूं। जब तुमने कहा कि अभी मिलना चाहते हो या थोड़ी देर ठहर सकते हो तभी संदेह उठा था। अब संदेह मजबूत हो गया। यह मेरा पता है, यह मैं हूं। मैं हूं राजा इस नगर का, यह तुम्हें पता नहीं? मेरे महल में ठहरे हो और कहते हो मैं झूठ बोल रहा हूं? सारे नगर की गवाही खड़ी कर सकता हूं कि मैं राजा हूं।

संन्यासी ने कहाः इससे कोई फर्क नहीं पड़ सकता। हो सकता है तुम्हारा पूरा नगर झूठ बोलने वालों का नगर हो। और हो सकता है तुम सबसे बड़े झूठ बोलने वाले हो इसलिए छोटे झूठ बोलने वाले तुम्हारे पक्ष में खड़े

हो जाएं। इससे फर्क नहीं पड़ता। यह सवाल नहीं है, किसी की गवाही और विटनेस लाने की जरूरत नहीं है। मैं तुमसे यह पूछता हूं, तुम आज राजा हो, कल अगर राजा न रह जाओ, कल अगर भिखारी हो जाओ, तो तुम्हारे भीतर कुछ बदल जाएगा या तुम तुम ही रहोगे?

उस राजा ने कहाः इससे क्या फर्क पड़ता है, मेरा राज्य चला जाए और मैं भिखारी भी हो जाऊं, तो भी मैं तो मैं ही रहूंगा। राज्य न रहेगा, संपत्ति न रहेगी, लेकिन मैं, मैं तो मैं ही रहूंगा।

तो संन्यासी ने कहाः एक बात तय हो गई कि राजा होना तुम्हारा अनिवार्य परिचय नहीं, एसेंशियल परिचय नहीं है। राजा तुम न रह जाओ तो भी तुम रहते हो और बदलते नहीं, तो फिर तुम कुछ और हो राजा होने से। राजा होने में ही तुम समाप्त नहीं हो जाते।

संन्यासी ने पूछाः यह तुम्हारा जो नाम है अगर दूसरा नाम रख दिया जाए तुम्हारा तो तुम बदल जाओगे?

राजा ने कहाः नाम के बदलने से क्या होता है, नाम कोई भी हो मैं तो मैं ही रहूंगा।

उस संन्यासी ने कहाः तब यह भी तय हो गया कि नाम भी तुम्हारी सत्ता का अनिवार्य हिस्सा नहीं है, एसेंशियल पार्ट नहीं है, नॉन-एसेंशियल है। सारभूत नहीं, आवश्यक नहीं, नाम कुछ और भी हो सकता है। अ से ब हो सकता है, ब से स हो सकता है। उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, तुम तुम रहते हो। इसलिए नाम भी तुम्हारा परिचय न रहा। फिर तुम्हारा परिचय क्या है? अब मैं दुबारा पूछ लूं।

उस राजा ने कहाः तब तो मैं मुश्किल में पड़ गया। जरूर इन चीजों से अलग मैं हूं, लेकिन फिर मैं क्या हूं, मुझे कुछ भी पता नहीं।

उस संन्यासी ने कहाः तो जाओ लौट जाओ। जिस दिन यह जान सको कि तुम कौन हो उस दिन आ जाना। उस दिन मैं खबर कर दूंगा। अभी मैं क्या कहूं कि कौन मिलने को आया है? आखिर परमात्मा से मैं क्या कहूं कि कौन मिलने को आया है? किसकी खबर करूं? तो जिस दिन तुम्हें पता चल जाए कि तुम कौन हो लौट आना और मैं तुम्हें परमात्मा से मिला दूंगा।

संन्यासी की बात तो यहीं खत्म हो गई थी। लेकिन अगर वह राजा मुझे मिल जाए तो उससे मैं यह कह दूं कि जिस दिन तुम जान लोगे कि तुम कौन हो उस दिन तुम्हें किसी के पास जाने की जरूरत नहीं रह जाएगी। क्योंकि वह जो तुम्हारे भीतर बैठा है वही परमात्मा है। जिस दिन उसे जान लोगे उस दिन और कोई परमात्मा की खोज की जरूरत नहीं है। और जिस दिन अपने भीतर जो है वह दिखाई पड़ जाएगा उसी दिन वह भी दिखाई पड़ जाएगा जो सबके भीतर है।

समुद्र की एक बूंद को हम जान लें तो पूरा समुद्र जान लिया जाता है। सूरज की एक किरण को हम पहचान लें तो प्रकाश के अनंत-अनंत स्रोत भी पहचान लिए गए। और अपने भीतर चेतना का एक दीया भी समझ में आ जाए तो वह सबके भीतर जो व्याप्त है-मनुष्यों में, पक्षियों में, पौधों में, पत्थरों में, सब तरफ जो जीवन व्याप्त है वह जीवन भी पहचान लिया गया। उसका एक अणु पहचान लिया गया वह सारा जीवन पहचान लिया गया। इसलिए जो खुद को जान ले उसे खुदा को जानने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रह जाता है।

वह राजा और उसकी बात मैंने आपसे कही। क्या वही बात आपकी भी अपनी नहीं है? और क्या अच्छा न होगा कि उस राजा को छोड़ दूं और आपको पकड़ लूं? और चर्चा राजा की हट जाए और आपकी आ जाए? क्या आप भी अपने को जानते हैं? नाम जानते होंगे, घर जानते होंगे, पिता का नाम जानते होंगे, पदवियां, उपाधियां जानते होंगे, डिग्रियां जानते होंगे, यह हूं, वह हूं जानते होंगे। यह सारा परिचय वस्त्रों से ज्यादा गहरा नहीं है, कपड़ों से ज्यादा गहरा नहीं है। कपड़ों के भीतर कौन छिपा है? नहीं, कपड़ों से ज्यादा हमारी कोई पहचान नहीं है।

एक महाकवि को एक सम्राट ने आमंत्रित किया था भोजन के लिए। गरीब था वह कवि, बहुत फटे-पुराने उसके वस्त्र थे। उसके मित्रों ने कहाः इन वस्त्रों में मत जाओ, वहां कोई न पहचानेगा, क्योंकि दुनिया में वस्त्रों के

सिवाय और कोई पहचान नहीं। लेकिन वह कवि न माना, उन्हीं फटे-पुराने वस्त्रों में राजा के महल चला गया। द्वारपाल ने धक्के देकर बाहर निकाल दिया। उसने बहुत कहा कि मैं राजा का मित्र हूं और आमंत्रित हूं। द्वारपाल ने कहा, भाग जाओ, नहीं तो पागलखाने का रास्ता दिखाना पड़ेगा। तुम और राजा के मित्र! थोड़ी शर्म भी नहीं आती। जरा अपनी शक्ल किसी दर्पण में देखो जाकर। मजबूरी, उसे वापस लौट आना पड़ा।

मित्रों ने कहाः तुम गलती में हो। वस्त्र पहचाने जाते हैं। वस्त्रों के सिवाय आदमी की कोई पहचान नहीं। तो हम तुम्हारे लिए वस्त्र ले आते हैं। वे वस्त्र ले आए कहीं से मांग कर। सुंदर, बहुमूल्य, उस कवि ने उन्हें पहना और वह वापस पहुंचा। वही द्वारपाल जिसने धक्के दिए थे, पैरों तक झुक कर उसने प्रणाम किया और कहा, आएं, भीतर आएं। भागा हुआ राजा को खबर दी। राजा गले मिला। भोजन पर बिठाया। तो उस कवि ने भोजन का पहला कौर लिया और अपने वस्त्रों को खिलाने लगा, अपनी पगड़ी को, अपने कोट को, और कहने लगा, पगड़ी खाओ, कोट खाओ। राजा ने कहा, बड़ी अजीब आदतें हैं आपके भोजन की। ऐसी आदतें तो कभी देखी नहीं। उस कवि ने कहा, मैं तो पहले भी आया था इस द्वार पर लेकिन वापस लौटा दिया गया। अब जो आए हैं वे वस्त्र हैं। जिनके कारण मैं भीतर आया हूं उनको भूल जाऊं और भोजन न कराऊं तो बड़ी अकृतज्ञता होगी। ये वस्त्र ही आए हैं मैं तो पहले भी आया था लौटा दिया गया। इसलिए अब मेरे आने न आने का कोई मतलब नहीं है। इन वस्त्रों को खिलाना जरूरी है। वस्त्र नाराज हो जाएं तो बड़ी कठिनाई हो जाएगी।

हमारी सारी पहचान वस्त्रों की है, अपने संबंध में भी, दूसरों के संबंध में भी। और इन वस्त्रों की पहचान का जो केंद्र है वही अहंकार है, वही ईगो है। हमारा पद, हमारा घर, हमारा नाम, हमारा वंश, हमारा परिवार, हमारा देश, हमारा धर्म, इन सबके वस्त्रों के बीच का जो केंद्र है, मैं, इन सबसे जो भरता है और परिपूरित होता है, मैं। मैं कुछ होता चला जाता हूं। छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी पर बैठता हूं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। थोड़े धन से बड़ा धन मेरे पास होता है, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। छोटे नेता से मैं बड़ा नेता होता हूं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। थोड़े अनुयायियों की जगह ज्यादा अनुयायी मुझे मिल जाते हैं, ज्यादा शिष्य मिल जाते हैं, तो मैं और बड़ा हो आता हूं। बड़ा गुरु हो आता हूं।

ऐसे मैं बढ़ता चला जाता है और इकट्ठा होता चला जाता है। और यह मैं, इतना बड़ा भ्रम, इतना बड़ा इल्युजन, यही भ्रम रोक लेता है सत्य को जानने से और परमात्मा को जानने से। यही मैं का खयाल रोक देता है उसको जानने से जो मैं हूं, जो कि सच में मैं हूं, जो कि असलियत में मैं हूं। तो इस मैं के साथ क्या करें? कैसे इस मैं को हटा दें? कैसे यह मैं मिट जाए? कैसे यह मैं न हो जाए? तो शायद द्वार खुल जाएं, दीवाल टूट जाए, रोशनी प्रकट हो जाए प्रकाश में मैं खड़ा हो जाऊं।

यह मैं की दीवाल है जो मुझे चारों तरफ से घेरे हुए है और बांधे हुए है। इसके भीतर मैं बंद हूं। और जब तक इसके भीतर बंद हूं परमात्मा से तो मिलना दूर अपने पड़ोसी से भी नहीं मिल सकता। पड़ोसी से मिलना तो दूर पति अपनी पत्नी से नहीं मिल सकता, पिता अपने पुत्र से नहीं मिल सकता, मित्र अपने मित्र से नहीं मिल सकता। जहां अहंकार है वहां दूसरे से अलगाव हो गया, दूसरे से भेद हो गया, पृथकता हो गई, दीवाल खड़ी हो गई।

जहां मैं है वहां प्रेम नहीं। क्योंकि प्रेम वहीं हो सकता है जहां मैं न हो। और जहां मैं है वहां कोई प्रार्थना नहीं। क्योंकि प्रार्थना भी वहीं हो सकती है जहां मैं न हो। मैं का न हो जाना ही प्रेम है। और मैं का न हो जाना ही प्रार्थना है। और मैं का न हो जाना ही परमात्मा का अनुभव है। लेकिन यह मैं न कैसे हो जाए?

पहले दिन की चर्चा में मैंने आपसे कहा, विश्वास छोड़ दें और विचार को जन्माएं। संध्या की चर्चा में मैंने कहा, भय छोड़ दें और अभय को पैदा करें। और अब तीसरी और अंतिम चर्चा में आपसे मैं कहता हूं, मैं को छोड़ दें, तब जो शेष रह जाएगा वही वास्तविक होना है, वही सत्य है, वही ईश्वर है, उसे कोई और नाम दे दें, उससे कोई भेद नहीं पड़ता।

यह कैसे मैं न हो जाए? क्या करें? बड़ी कठिनाई यही है कि आप जो भी करेंगे उससे मैं नहीं मिटेगा। क्योंकि करने वाला मैं ही हूं। तो मैं जो भी करूंगा उससे मैं नहीं मिटेगा। मैं जो भी करूंगा उससे मैं भरेगा, मजबूत होगा। इसलिए विनम्र आदमी जो कहता है कि मैं ना-कुछ हूं, मैं तो कुछ भी नहीं आपके पैर की धूल हूं, उसकी आंखों में झांक कर देखें, वह कह रहा है कि मैं कुछ हूं।

विनम्र आदमी की अपनी अहमता है, अपनी ईगो है, अपना अहंकार है। अगर उससे आप कह दें कि तुमसे भी बड़ा एक विनम्र आदमी है हमारे गांव में। तो आपको पता चल जाएगा। वह कहेगा, ऐसा नहीं हो सकता कि मुझसे भी बड़ा और कोई विनम्र हो। मैं ही सबसे ज्यादा विनम्र हूं, और मैं खड़ा हो जाएगा। एक महात्मा से कह दें, तुमसे बड़ा महात्मा भी मौजूद है, और कठिनाई शुरू हो जाएगी।

गांधी इंग्लैंड गए। गांधी के एक मित्र ने जाकर बर्नार्ड शॉ को कहा कि आप गांधी को महात्मा मानते हैं या नहीं? जैसी बर्नार्ड शॉ की हमेशा की आदत थी, उसने कहा, मानता हूं, जरूर मानता हूं, लेकिन नंबर दो, नंबर एक मैं हूं। दो महात्मा हैं दुनिया में, एक यह मोहनदास करमचंद गांधी और एक बर्नार्ड शॉ, लेकिन बर्नार्ड शॉ नंबर एक और मोहनदास करमचंद गांधी नंबर दो। नंबर दो है तुम्हारा महात्मा, थोड़ा छोटा है, ऐसे दो ही महात्मा हैं, लेकिन मैं नंबर एक हूं।

जिन्होंने कहा था वे बहुत हैरान हो गए। उन्होंने जाकर गांधी को वापस कहा कि बर्नार्ड शॉ तो बड़ा अहंकारी मालूम होता है, अपने ही मुंह से कहता है कि मैं नंबर एक महात्मा हूं। गांधी ने कहा, वह आदमी बड़ा सच्चा है। मन में तो सभी के यह होता है कि मैं नंबर एक हूं, लेकिन लोग छिपाए बैठे रहते हैं। वह सीधा और साफ है। जो सीधी बात थी उसने कह दी।

हर आदमी के मन में यह होता है कि मैं नंबर एक हूं। छिपाए बैठा रहता है। उसे किसी से कहता नहीं। असल में एक बड़ा मजाक है-जैसे अरब में एक मजाक है कि भगवान जब लोगों को बना कर दुनिया में भेजता है तो एक बड़ा मजाक कर देता है हर आदमी के साथ। जब उसे बना कर दुनिया में धक्के देने लगता है तो उसके कान में कह देता है, मेरे मित्र, तुमसे अच्छा आदमी मैंने कभी नहीं बनाया। और वह हरेक से कह देता है, यही मुश्किल है। और हरेक आदमी को यही खयाल पैदा हो जाता है।

यह जो हमारे भीतर मैं है, यह जो खयाल है कि मैं ही हूं कुछ। यह खयाल, अगर हम इसको मिटाना चाहें, तोड़ना चाहें, तो भी टूटेगा नहीं। तब यह खयाल पैदा हो जाएगा कि मैं विनम्र हूं। मैं अहंकारी नहीं हूं। लेकिन मैं मौजूद रहेगा। दो रास्ते हैं आदमी के सामने, या तो इसको भरे, दौड़े, राज्य जीते, धन जीते, यश जीते और इस मैं को भरे। तो भी यह कभी भर नहीं पाता। यह थोड़ा समझ लेने जैसा है। यह कभी भर नहीं पाता। सिकंदर सारी दुनिया जीत ले तो भी नहीं भर पाता।

सिकंदर जिस दिन मरा, जिस नगर में मरा, उस नगर के लोग हैरान हो गए। सिकंदर की अरथी बड़ी अजीब थी। ऐसी अरथी कभी भी दुनिया में किसी गांव में कभी न निकली थी। उसकी अरथी के बाहर दोनों हाथ लटके हुए थे नीचे। लोग बड़े हैरान हो गए कि यह क्या कुछ भूल हो गई है? लेकिन भूल कैसे हो सकती थी? और सिकंदर की अरथी थी, किसी सामान्य भिखमंगे की, सामान्य आदमी की तो नहीं। और हाथ दोनों बाहर लटके हुए थे, सबको दिखाई पड़ते थे। भूल कैसे हो सकती थी? तो लोग पूछने लगे, क्या है, ये हाथ बाहर क्यों हैं? सभी अरथियों के हाथ तो भीतर बंद होते हैं। तो पता चला कि सिकंदर ने मरने के पहले कहा था कि मैं जब मर जाऊं तो अरथी के बाहर मेरे दोनों हाथ रखना ताकि दुनिया ठीक से देख ले कि मेरी मुट्ठियां भी खाली हैं, मैं भी भर नहीं पाया। दौड़ा बहुत, बहुत कोशिश की मैंने कि भर लूं। जो मेरे भीतर उठा था मेरा अहंकार पूरा हो जाए, लेकिन नहीं पूरा हो सका है।

सिकंदर का नहीं हुआ, किसी का कभी नहीं हुआ। अहंकार पूरा नहीं होता। क्यों? कुछ कारण हैं।

एक फकीर के पास एक युवक पहुंचा और उसने कहा कि मैं चाहता हूं कि या तो मेरा अहंकार पूरा हो जाए, तो छुटकारा मिले और या फिर अहंकार से ही छुटकारा हो जाए? दो में से कोई भी रास्ता बता दें, या तो अहंकार से मुक्त हो जाऊं तो ठीक, यह पीड़ा छूटे, यह दुख लाने वाला बिंदु, यह वेदना का केंद्र, यह कष्ट का मध्य-बिंदु अलग हो जाए। यही तो पीड़ा लाता है चौबीस घंटे। संघर्ष लाता है, हिंसा लाता है, कांफ्लिक्ट लाता है। तो या तो इससे छूट जाऊं और या फिर यह पूरा ही भर जाए। यह जो चाहता है वह पूरा हो जाए। दो में से कोई भी रास्ता बता दें?

उस फकीर ने कहाः आओ, आज रास्ता बता ही दूंगा। लेकिन देखने के लिए आंखें चाहिए। और वह अपने के पास के झोपड़े के कुएं पर गया। वह युवक उसके साथ गया। और उसने कहा, देखने के लिए आंख चाहिए, तो वह गौर से देखता रहा।

उसने एक बहुत बड़ा ढोल उठाया, कुएं के किनारे रखा और बालटी कुएं में डाली, बालटी भरी और ढोल में डाली। दूसरी बालटी भरी ढोल में डाली, तीसरी भरी ढोल में डाली, लेकिन ढोल नीचे से बेपेंदी का था, बॉटमलेस, उसमें कोई नीचे पेंदी नहीं थी। वह पानी नीचे से निकलता गया। वह लड़का खड़ा देखता था। दो-चार बालटी तक तो उसने बरदाश्त किया और उसने कहा, ठहरिए, आप पागल तो नहीं हैं? जिस ढोल को आप भर रहे हैं उसमें नीचे कोई पेंदी नहीं, वह दोनों तरफ से खुला हुआ है। आप भर-भर कर हैरान हो जाएंगे, वह न भरेगा। तो उस फकीर ने कहा, बस लौट जाओ, अगर दिखाई पड़ गया हो तो देख लेना।

अहंकार खाली शून्य है, उसमें कितना ही भरो कुछ भी नहीं भरेगा, उसमें कोई पेंदी नहीं है। अहंकार एंप्टीनेस, अहंकार है नथिंगनेस, ना-कुछ, हवा, खाली जगह, उसमें भरो, कुछ भी न भरेगा, कितना ही भरो, सारी दुनिया डाल दो, उसमें भर कर पाओगे वह खाली है।

उस फकीर ने कहाः तुझे यह तो दिखाई पड़ गया कि यह पागलपन है। जिस चीज में मैं पानी भर रहा हूं अगर उसमें पेंदी नहीं है तो यह पागलपन है तुझे दिखाई पड़ गया, लेकिन क्या तूने कभी खोजा कि अहंकार में कोई पेंदी है? क्या कभी तूने खोजा कि अहंकार में कुछ भरा जा सकता है? जा और अब खोज, खोज अपने भीतर कि अहंकार क्या है?

दो तरह की गलतियां हैं, अहंकार अगर कुछ भी नहीं है तो न तो उसे भरा जा सकता और न उसे खाली किया जा सकता। क्योंकि खाली भी उसे किया जा सकता है जो भरा जा सकता हो। इस बात को मैं फिर से दोहराता हूं, खाली वही चीज की जा सकती है जो भरी जा सकती हो। जब अहंकार भरा ही नहीं जा सकता तो उसको खाली भी नहीं किया जा सकता।

दो तरह की नासमझियां हैं, जो दुनिया में चलती हैं। अहंकार भरने की नासमझी है और अहंकार खाली करने की नासमझी है। एक का नाम भोग है, एक का नाम त्याग है। दोनों नासमझियां हैं। फिर अहंकार के साथ क्या किया जा सकता है? जो पहली चीज की जा सकती है वह यह कि उसे खोजा जा सकता है कि वह है भी या नहीं? पहली चीज है, जाना जा सकता है कि अहंकार क्या है?

और बड़े आश्चर्यों का आश्चर्य है कि जो उसे जानने जाता है वह पाता है कि वह है ही नहीं। जो उसे भीतर खोजने जाता है वह पाता है कि वह है ही नहीं। और जिस क्षण यह पा लिया जाता है कि अहंकार नहीं है उस क्षण जो शेष रह जाता है वही परमात्मा है। उस क्षण जो शेष रह जाता है वही आत्मा है। उस क्षण जो शेष रह जाता है असीम और अनंत वही सत्य है।

अहंकार को न तो भरना है, न छोड़ना है। अहंकार को जानना है, देखना है, पहचानना है। क्या है? है भी या नहीं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी छाया से लड़ रहा हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं किसी छाया का पीछा कर रहा हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं कोई सपने में हूं? कहीं ऐसा तो नहीं है कि मैं नींद में हूं? और

जिस चीज को भरने या निकालने की कोशिश में लग गया हूं, वह है ही नहीं। ऐसा ही है। लेकिन मेरे कहने से नहीं। तो भीतर जाकर देखने की बात है। खोजने की बात है कि यह अहंकार कहां है?

कभी खोजा आपने? कभी दो क्षण एकांत में बैठ कर भीतर जाकर खोज की कि यह अहंकार क्या है? जो मुझे पागल किए हुए है, दौड़ा रहा है, दौड़ा रहा है, दौड़ा रहा है और एक सीमा पर जब मैं थक जाता हूं, परेशान हो जाता हूं, तो उलटी दौड़ शुरू होती है, छोड़ने की दौड़ शुरू होती है, छोड़ने की दौड़ शुरू होती है, लेकिन यह है क्या? कौनसी है जगह यह अहंकार?

एक संन्यासी भारत से चीन गया था कोई चौदह सौ वर्ष पहले। बोधिधर्म था उसका नाम, चीन का सम्राट उसका स्वागत करने राज्य की सीमा तक आया। सुना था उसका बहुत नाम। उसकी अदभुत बातों की खबर उससे पहले पहुंच गई थी। उस सम्राट वू ने बोधिधर्म का स्वागत किया। स्वागत के बाद उसे महल में ले गया, विश्राम के बाद सम्राट वू ने बोधिधर्म को पूछा, एक ही बात मुझे पूछनी है, कहते हैं सभी धर्म, कहते हैं सभी शास्त्र, कहते हैं सभी उपदेष्टा, अहंकार छोड़ो। कैसे छोड़ूं इस अहंकार को?

भरने की कोशिश करके देख ली है, सारे चीन का मालिक हो गया हूं, लेकिन पाता हूं कि कुछ भी भरा नहीं, वही खाली का खाली हूं। सोचता था पहले पूरे साम्राज्य को पा लूंगा चीन के, तृप्ति हो जाएगी, लेकिन तृप्ति नहीं हुई। अब मन कहता है, पूरी दुनिया को पा लो, लेकिन जो मन कहता था, पूरे चीन को पा लो, तृप्ति हो जाएगी। पूरे चीन को पाकर तृप्ति नहीं हुई, अब उस मन की कैसे मानूं? वह कहता है, पूरी पृथ्वी को पा लो। कैसे मानूं कि फिर तृप्ति हो जाएगी? रोज-रोज धोखा खाया, मन ने जो भी कहा कि यह पा लो, तृप्ति हो जाएगी, वह पा लिया और पाते ही पाया हाथ खाली के खाली हैं। अब कैसे मानूं? अब क्या करूं? बूढ़ा हो गया हूं, अब दुनिया जीतने को जाऊं? लेकिन डर लगता है, इतना सब पाया और तृप्ति न हुई, और हर चीज के लिए मन ने कहा था तृप्ति हो जाएगी। तो अब आगे के लिए कैसे मानूं? वह तो रास्ता दिखाई नहीं पड़ता। तो भिक्षुओं की शरण में जाता हूं, संन्यासियों की, उनसे पूछता हूं, वे कहते हैं, छोड़ो इसको। अहंकार छोड़ो। वे कह देते हैं, समझ भी लेता हूं, लेकिन कैसे छोड़ूं? कहां है यह जिसे मैं छोड़ूं? कहां फेंकूं इसे? कोई वस्त्र छोड़ने को कहे, छोड़ दूं; कोई चमड़ी निकालने को कहे, निकाल कर फेंक दूं; कोई गर्दन काटने को कहे, गर्दन काट दूं, लेकिन यह अहंकार कहां है जिसे छोड़ दूं? कहां है यह? उस बोधिधर्म ने कहा, कल सुबह चार बजे आ जाओ और तुम्हारा अहंकार छुड़ा ही देंगे।

वह सम्राट वू लौटा, सोचने लगा, कैसे छुड़ा देगा यह? सीढ़ियां उतरता था तब बोधिधर्म ने कहा, लेकिन खयाल रहे, अकेले मत आ जाना, अहंकार को भी साथ ले आना। यही कठिनाई तो उसकी भी थी वही बात फिर खड़ी हो गई। कहां है यह अहंकार? रात भर जागता रहा, सोचता रहा। क्यों कहा है इस भिक्षु ने कि अकेले मत आना अहंकार को भी साथ ले आना? सुबह चार बजे आया। आते ही बोधिधर्म ने पूछा, आ गए, लेकिन अकेले मालूम पड़ते हो, कहां है वह? अहंकार कहां है? उस वू ने कहा, यही तो मेरी परेशानी है, रात भर खोजता रहा मिलता नहीं। बोधिधर्म ने कहा, बैठो मेरे सामने, आंख बंद करो और खोज लो। एक भी कोना-कांतर न रह जाए मन के भीतर, एक भी कार्नर न रह जाए जो अनखोजा रह जाए। खोज लो पूरे मन के कोने-कोने में और कहीं न पाओ, तो बात खत्म हो गई, फिर क्या छोड़ना है? हां, एक भी कोना अनजाना न रह जाए, अननोन न रह जाए, नहीं तो शक बना रहेगा कि शायद वहां बैठा हो। तो बैठो और जाओ भीतर और खोजो और खोजो और मैं डंडा लिए तुम्हारे सामने बैठा हूं, मिल जाए तो खबर कर देना, वहीं उसकी हत्या कर दूंगा।

उस अंधेरी रात उस सुबह की पहाड़ी झील पर अकेला वह राजा उस पागल बोधिधर्म के सामने बैठ गया। डर तो उसे लगने लगा कि कहीं यह डंडा, यह डंडा किसलिए लिए हुए है? और यह क्या करेगा? उसने आंखें भीतर बंद कीं।

छोड़ दें उस राजा वू को, देखें, खुद अपने भीतर ही समझ लें कि आप भी बैठ गए और आंख बंद कर ली है और मैं डंडा लिए आपके सामने बैठा हुआ हूं, और आप खोज रहे हैं भीतर इस अहंकार को कि यह कहां है। खोजें, जितना खोजेंगे उतना ही पाएंगे कि वह नहीं है। जितना खोजेंगे उतना ही पाएंगे वह इवोपरेट हो गया, वाष्पीभूत हो गया, वह कहीं मिलता नहीं। वह है ही नहीं, मिलेगा कैसे? वह होता तो मिल सकता था।

इस भीतर खोजने की जो प्रक्रिया है उसी का नाम ध्यान है। परमात्मा को नहीं खोजा जाता है। परमात्मा की कोई खोज नहीं हो सकती, खोजा जाता है अहंकार को। जागरूक होकर, अवेयरनेस से, होश से भर कर भीतर कोने-कोने में देखना है कहां है यह? वहां मिलेंगे विचार, वहां मिलेंगी वासनाएं, वहां मिलेंगी कल्पनाएं, स्मृतियां, लेकिन अहंकार नहीं मिलेगा।

और तब यह दिखाई पड़ेगा कि जैसे कोई आदमी एक हाथ में मशाल ले ले और जोर से घुमाए, तो एक अग्निवृत्त, एक फायर सर्किल दिखाई पड़ने लगता है। जो होता नहीं, सिर्फ दिखाई पड़ता है। मशाल हाथ में लेकर कोई घुमाता है जोर से, तो एक अग्नि का वृत्त दिखाई पड़ता है, गोल अग्नि का सर्किल दिखाई पड़ता है। वह कहीं है नहीं, लेकिन मशाल इतनी तेजी से घूमती है कि एक गोल वृत्त का भ्रम पैदा कर देती है। हाथ धीमे घुमाएं, हाथ रोक लें, तो दिखाई पड़ जाता है अग्निवृत्त कहीं भी नहीं था। थी सिर्फ मशाल, तेजी से घूमने से मालूम होता था वृत्त है।

मन के भीतर विचार, कल्पनाएं, कामनाएं, इच्छाएं इतनी तेजी से घूमती हैं, इतनी तेजी से घूमती हैं कि उनके तेजी के घूमने की वजह से एक सर्किल मालूम पड़ता है और वह सर्किल ही मालूम पड़ता है, मैं हूं अहंकार। लेकिन जब भीतर जाकर देखना शुरू करेंगे, शांत भीतर खोजना शुरू करेंगे, तो टुकड़े-टुकड़े विचार दिखाई पड़ेंगे, कहीं कोई सर्किल दिखाई नहीं पड़ेगा। तो पता चलेगा विचार हैं, इच्छाएं हैं, कामनाएं हैं, लेकिन मैं कहां हूं। मैं तो नहीं हूं। और बड़े मजे की बात है, बहुत गहरे अर्थ की कि जैसे ही यह दिखाई पड़ जाए कि मैं नहीं हूं, केंद्र टूट गया, केंद्र बिखर गया। बदली की भांति धुआं फैल गया।

जीवन जिस पर हम चलाते थे, बांधते थे, वह बिखर गया। तब उस बिखरे हुए धुएं के नीचे ही वह भूमि मिल जाएगी जो आत्मा की है। इस धुएं में जब तक जो घिरा है, इस झूठे वृत्त में जब तक जो बंधा है, नीचे आंख नहीं जाती, नीचे दृष्टि नहीं जाती, यह उखड़ जाए, विलीन हो जाए और यह दिखाई पड़ जाए कि मैं तो नहीं हूं, तब इतनी गहन शांति उत्पन्न होती है, इतनी टोटल साइलेंस। क्योंकि सारा उपद्रव, सारी अशांति मैं की है। वह दिखाई पड़ जाए मैं नहीं हूं, तो एकदम सब शांत हो जाता भीतर, सब मौन, सब चुप। उस मौन में, उस चुप्पी में, उस शांति में, उस साइलेंस में, उसका अनुभव होना शुरू होता है जो अज्ञात है, अननोन है। वही परमात्मा है। उस शांति में ही वह जाना और पहचाना जाता है।

अहंकार अशांति है। अहंकार अज्ञान है। नहीं है जहां अहंकार, वहां वह है जो है, जो वस्तुतः है। तो न तो छोड़ना है, न भरना है, न बनाना है, न मिटाना है, बल्कि जानना है। धर्म है जानना, ज्ञान, चेतना। जितनी, जितनी तीव्र रूप से मेरी कांशसनेस, मेरी अवेयरनेस, मेरी चेतना जागती है और खोज करती है, जितने जोर से मैं बोध के दीये को लेकर मैं भीतर जाता हूं और खोजता हूं, उतना ही नहीं पाया जाता वह जो मेरी पीड़ा थी, जो मेरा बंधन था, जो मेरी दीवाल थी।

एक अंतिम छोटी बात और चर्चा मैं पूरी करूंगा।

गिर जाती है जहां यह दीवाल वहीं हम सबसे जुड़ जाते हैं। गिर जाता है जहां यह भ्रम मेरे अलग और पृथक होने का, वहीं सागर से बूंद का मिलन है, वहीं व्यक्ति से समष्टि का मिलन है।

एक छोटी सी कहानी अंत में कहूं।

एक सम्राट का जन्म-दिन था और उसने अपने राज्य के सौ बड़े ब्राह्मणों को आमंत्रित किया। उन्हें भोजन कराया, उनकी सेवा की और पीछे उसने घोषणा की उन ब्राह्मणों को कि मैं कुछ दान देना चाहता हूं। लेकिन मैं अपनी मर्जी से दान दूंगा तो छोटा होगा इसलिए तुम्हारे ऊपर छा.ेड देता हूं। राजधानी के बाहर झील के पार मेरा जो बहुत बड़ा उपवन है, श्रेष्ठतम भूमि है उस उपवन की इस पूरे राज्य में, मैं तुमसे कहूंगा कि तुम जाओ और उस जमीन में जितनी जमीन तुम्हें घेरना हो घेर लो, जो जितनी जमीन घेर लेगा वह उसकी हो जाएगी। जो जितनी बड़ी जमीन पर दीवाल बना लेगा और घेरा बना लेगा वह उसकी हो जाएगी। जितनी पर बना लेगा, कोई मेरी तरफ से सीमा नहीं, जितनी तुम्हारी सामर्थ्य हो सीमा बनाने की तुम बना लो। और अंत में उसने यह और कह कर पागलपन बढ़ा दिया, उसने कहा, और जो सबसे ज्यादा जमीन घेर लेगा उसे मैं राजगुरु के पद पर भी बिठा दूंगा।

ब्राह्मण पागल हो गए थे। वे भागे गए और उन्होंने अपने मकान, जमीन, जायदाद, जो कुछ था, सब बेच दिया। सारी संपत्ति इकट्ठी करके, मित्रों से जो उधार ले सकते थे लेकर, क्योंकि यह मौका हमेशा के लिए चूके जाने वाला था। मुफ्त जमीन मिलती थी सिर्फ घेरने के मूल्य पर। जितनी बड़ी दीवाल बना लेंगे वह जमीन को घेर लेंगे वह उनकी हो जाएगी।

पागल हो गए वे, बहुमूल्य जमीन थी और मुफ्त मिलती थी। उन सबको छह महीने का वक्त मिला था। उन्होंने अपने कपड़े-लत्ते तक बेच कर एक-एक लंगोटी रख ली। एक दफा जमीन मिल जाए फिर उसको बेच कर तो करोड़ों रुपये मिल सकते थे। उन्होंने जमीन पर बड़े-बड़े घेरे बना लिए। जिसकी जितनी पहुंच थी उतना पैसा ले आया। घेरे बन गए, अंतिम दिन आ गया और सम्राट देखने आया।

उन सौ ब्राह्मणों में एक ही ब्राह्मण था जिसको बाकी निन्यानबे नासमझ और पागल और जड़बुद्धि समझते थे। क्योंकि उसने जरा सी जमीन का टुकड़ा घेरा था। बहुत जरा सी जमीन का टुकड़ा। और वे हैरान थे कि इतना जरा सा टुकड़ा उसने क्यों घेरा है? और वह भी उसने कोई पक्की दीवाल न बनाई थी बल्कि लकड़ियां लाकर लगा दी थीं और घास-फूस बांध दिया था। वे हैरान थे कि उस नासमझ को इतना भी खयाल नहीं है कि कितना बड़ा अवसर चूका जाता है। स्वर्ण बटोरने का अवसर था और वह चूक गया था।

सौ ही ब्राह्मण इकट्ठे हुए और राजा ने कहा, मैं पूछना चाहता हूं, सर्वाधिक जमीन किसने घेरी है? वह खड़े होकर कह दे। सबके हैरानी का ठिकाना न रहा, वह गरीब ब्राह्मण जिसने सबसे थोड़ी जमीन घेरी थी खड़ा हो गया और उसने कहा कि मैं राजगुरु के पद पर अपने को घोषित करता हूं, मैंने सर्वाधिक जमीन घेरी है। सारे लोग हंसने लगे कि इसका दिमाग मालूम होता है खराब हो गया है। लेकिन दावा किया गया था तो राजा को देखने जाना पड़ा। राजा भी चिंतित तो हुआ क्योंकि उसे पता चल चुका था कि वही सबसे कम घेरा है। और उसकी जमीन पर पहुंच कर और सारे लोग हंसने लगे। कल तक तो वहां उसने जो घास-फूस की बागुड़ लगाई थी, रात उसमें भी आग लगा दी थी। अब वहां कोई भी घेरा नहीं था।

उस ब्राह्मण से राजा ने कहाः कहां है तुम्हारा घेरा? उस ब्राह्मण ने कहाः मैं कितना ही घेरता तो घेरा छोटा होता। मन कहता, और बड़ा घेरो। छोटा ही होता वह घेरा। आखिर जो भी घिरा होगा वह छोटा ही होगा, उसका घेरा होगा। तो फिर मैंने सोचा कि मैं घेरा तोड़ दूं, तो फिर मेरा घेरा सबसे बड़ा हो जाएगा। तो रात मैंने आग लगा दी घेरे में। और अब मैं दावा करता हूं कि मेरी ही जमीन सबसे बड़ी है क्योंकि उस पर कोई घेरा नहीं है।

राजा उसके पैरों पर गिर पड़ा और उसने कहा, ये निन्यानबे व्यवसायी हैं, ब्राह्मण तू अकेला है। क्योंकि जो घेरों में आग लगा देता है उसका संबंध असीम से हो जाता है। और जो सीमा बांधता है वह सीमित से बंध

जाता है। एक ही सीमा है अहंकार की, चाहे किसी ने थोड़ा बनाया हो, किसी ने थोड़ा बड़ा, किसी ने और थोड़ा बड़ा।

अहंकार की भूमि पर सीमाएं हैं। एक दरिद्र की छोटी झोपड़ी है और एक सम्राट का बहुत बड़ा महल है। और एक दरिद्र के पास छोटी सी जमीन का टुकड़ा है और एक सम्राट के पास सारी पृथ्वी हो सकती है। लेकिन जहां घेरा है वहीं सीमा है और जहां सीमा है वहां असीम से पृथक्करण है। क्या खयाल में यह बात आ जाए तो उस घेरे में आग लगा दी जा सकती है? और उस घेरे में आग लगा कर कोई हारता नहीं, खोता नहीं, बल्कि असीम का मालिक हो जाता है।

जो सीमित को छोड़ने का साहस करते हैं, वे असीम के पाने के अधिकारी और मालिक हो जाते हैं। जो तुच्छ को छोड़ने की हिम्मत करते हैं, वे विराट की संपदा के प्रभु हो जाते हैं। जो अपने को खोने को तैयार हैं, वे परमात्मा को पाने के अधिकारी हैं।

आज की इस अंतिम चर्चा में मैंने एक ऐसी चीज को खोने के लिए आपको कहा है जो वस्तुतः नहीं है। उस नहीं को जो खो देता है वह उसको पा लेता है जो वस्तुतः है और जो उस नहीं के साथ बंधा रहता है वह वस्तुतः जो है, जिसका वस्तुतः अस्तित्व है, जिसका ऑथेंटिक एक्झिस्टेंस है, वही जिसे हम परमात्मा कहते हैं, उसे पाने से सदा के लिए वंचित हो जाता है। उसके द्वार खुले हैं, हमारे द्वार बंद हैं। उसका सागर मौजूद है, हमारी बूंद खोने को तैयार नहीं। लेकिन स्मरण रखें, जब बूंद सागर में अपने को खोती है तो कुछ खोती नहीं है सिर्फ बूंद होना खो जाता है और पूरे सागर को पा लेती है।

तो अंतिम रूप से यह निमंत्रण देता हूं, बूंद को खो जाने दें ताकि सागर के मालिक हो जाएं। वही सागर प्रभु है।

मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।